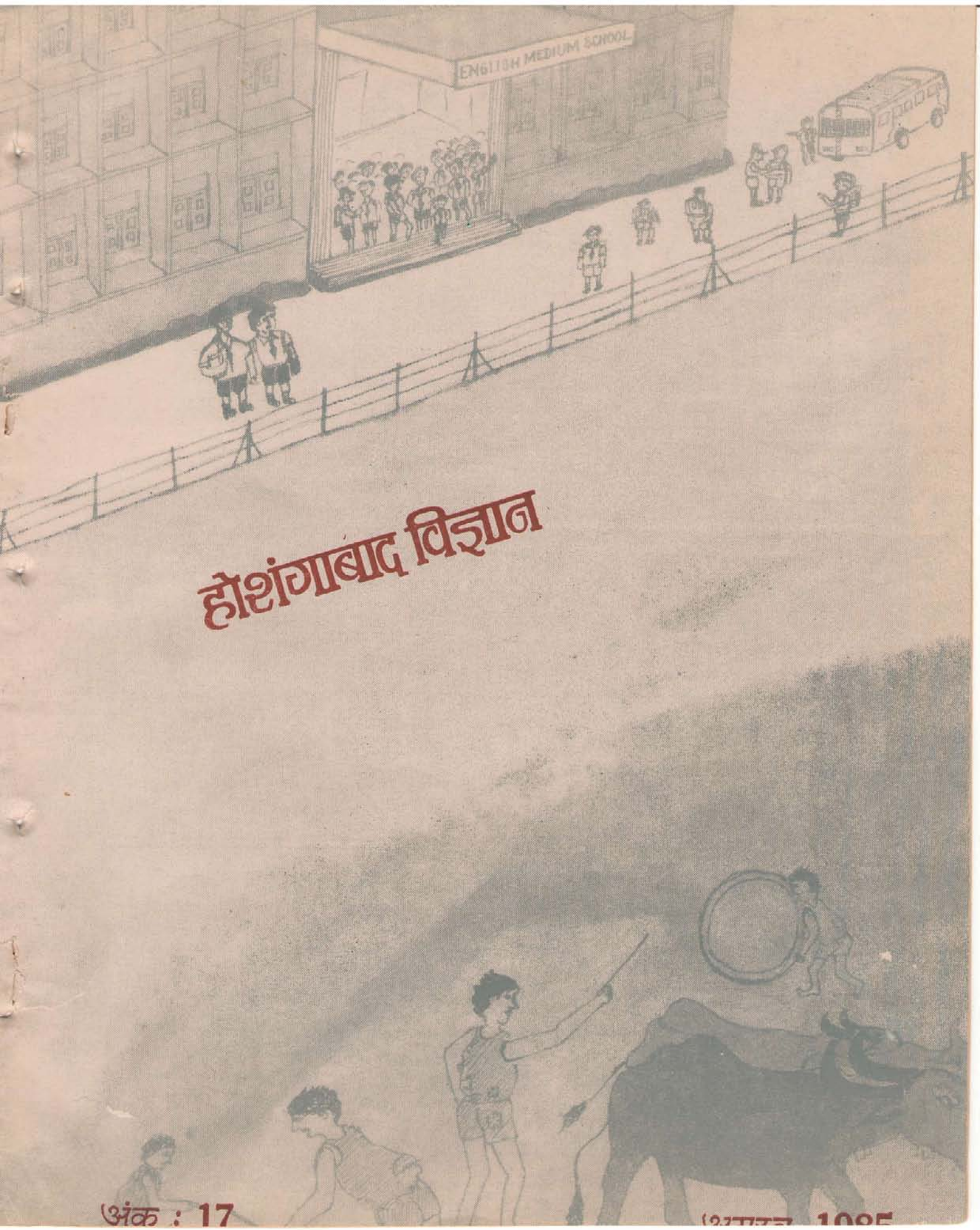

होशंगाबाद विज्ञान

अंक : 17

इस अंक में...

1. पाठक लिखते हैं	–	1
2. जरूरत है नई शिक्षा नीति की	– जे. पी. नायक	4
3. विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम	–	8
4. पुनर्निर्धारण क्यों करते हैं	– डॉ. हृदयकांत दीवान	13
5. गलत दिशा (लघु कथा)	– सुबोध कुमार श्रीवास्तव	14
6. विद्यारम्भ (कहानी)	– राधावल्लभ त्रिपाठी	15
7. दिवास्वप्न	– गिजुभाई	19
8. समाज की पढ़ाई	– डॉ. कृष्ण कुमार	21
9. जब कपास ने इतिहास बुना	– प्रो. पी. माहेश्वरी	26
10. प्रदूषण के शिकंजे में	–	28
11. तरकीब	– जॉन हॉल्ट	34
12. शिक्षक वृद्धि अभियान	– डॉ. रामनारायण स्याग	36
13. नरवर में बाल मेला	– डॉ. उमेश वशिष्ठ	37
14. पहेलियाँ	–	39
15. परीक्षा का भूत कैसे हटे	– डॉ. रामनारायण स्याग	40
16. विज्ञान शिक्षण के कुछ पहलू	– डॉ. अरविन्द गुप्ते	42
17. कविता का पन्ना	– अरुण कमल	

सम्पर्क :

1. एकलव्य, ई–1 अरेरा कॉलोनी, **भोपाल** (म.प्र.)
2. एकलव्य, कोठी बाजार, होमगार्ड ऑफिस के पास, **होशंगाबाद**
3. एकलव्य, पचमढ़ी रोड़, **पीपरिया** (जिला–होशंगाबाद)
4. एकलव्य, नेहरू कॉलोनी, **हरदा**
5. एकलव्य, 293, विवेकानंद कॉलोनी, **उज्जैन**
6. एकलव्य, 7, एम. आय. जी. कॉलोनी, माण्डू रोड़, **धार**
7. एकलव्य, 'समाधान', रजब अली मार्ग, **देवास**

पाठक लिखते हैं

अंक 15 में प्रकाशित लेख "अध्यापक की मंशा कितनी कारगर" पर पाठकों से आई कुछ प्रतिक्रियाएँ अंक 16 में दी गई थीं। शेष प्रतिक्रियाएँ यहाँ प्रस्तुत हैं।

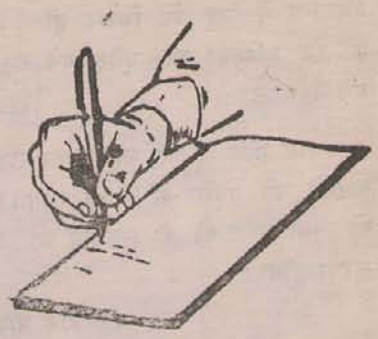

गले में उतरती भी है और अटकती भी है

लेख में प्राचीन काल से वर्तमान तक अध्यापक की स्थिति का विश्लेषण निश्चित ही बड़े अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है। इस लेख को पढ़ने के बाद बहुत-सी बातें गले उतरती है और कुछ गले में अटकती-सी महसूस होती हैं जिन्हें निगल पाना सम्भव नहीं हैं और उगल देना शायद आवश्यक भी है।

1. यह सच है कि अध्यापक समग्र परिवर्तन का माध्यम नहीं हो सकता। वह परिस्थितियों से अछूता भी नहीं रह सकता। परन्तु परिवर्तन के बारे में वह सोच भी न सके या परिवर्तन में उसकी भूमिका हो ही नहीं सकती यह बात सच नहीं है। वह केवल परिस्थितियों का दास है यह भी ठीक नहीं है।

2. सामन्तवाद है और अध्यापक पर भी उसका प्रभाव है। परन्तु वह इस प्रकार की "ठकुर सुहाती" बातें करने और मानने को मजबूर क्यों है? क्या यह सच नहीं कि "ठकुर सुहाती" प्रणाली का उपयोग कर वह अपने आपके लिए आश्रय नहीं ढूंढता? परिस्थितियों से संघर्ष करने के बजाय क्षणिक सुखों के लालच में कथित सामंतवाद या आश्रयदाता की गोद में अपना मुंह क्यों छुपा लेता है? ये बातें उसके स्वाभिमानहीन और कायरतापूर्ण रूप को उजागर करती है। वशिष्ट चुप रहे। द्रोण ने प्रतिकूल व्यवहार किया। इनके ये कृत्य अंतःकरण में छिपे निजी स्वार्थों की मजबूरी सिद्ध करते हैं। राजसी सम्मान पाने और राजगुरु बने रहने की लालसा के वशीभूत ही उन्होंने गुरु की गरिमा के विपरीत व्यवहार किया। अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति कर पाने का इच्छुक प्राणी स्वावलम्बी हो भी कैसे सकता है? उसकी अपनी हैसियत ही क्या रह जाएगी?

3. निश्चित ही अध्यापक पर आर्थिक अंकुश है। उसका हथियार कलम है और मस्तिष्क ढाल है। तलवार पर भय की जंग लगी है और ढाल व्यवस्था के प्रहार झेल पाने में असमर्थ। तो क्या अपने आपको लहरों के सहारे छोड़ देना बुद्धिमानी है? डूबने से बचने के लिए हाथ-पैर तो मारना ही पड़ेगा। केवल लहरों के सहारे रहने वाला तो डूबेगा ही। क्या अध्यापक कलम का उपयोग केवल वेतन की टिकिट पर हस्ताक्षर करने के लिए ही कर सकता है? या कहीं और भी? जिस दिन वह कलम की गरिमा समझ लेगा उस दिन इसके उपयोग भी बदल जायेंगे।

4. आज इस बात को सोचने की आवश्यकता बड़ी महत्वपूर्ण है कि अध्यापक का उद्धार कैसे हो? कौन करे? जहाँ तक उद्धारों की बात है अपने आप नहीं हुए। उद्धार जिसका होता है उसे कुछ न कुछ तो करना ही पड़ता है। वैसे भी निर्बलों की सहायता तो दैव भी नहीं करता।

5. संघर्ष के लिए अध्यापक गुरिल्ला बने। न केवल गुरिल्ला बल्कि बौद्धिक गुरिल्ला बनना बड़ा कठिन काम है। क्योंकि आज कबीर और सुकरात की रूहें अध्यापक के शरीर को धारण कर लें इसमें आश्चर्य तो नहीं हैं परन्तु संदेह अवश्य है। गुरिल्ला या बौद्धिक गुरिल्ला बनेगा अध्यापक कैसे? उसे गुरिल्ला लड़ाई का ज्ञान कैसे होगा? क्या वह अपनी केंचुली बदलने को तैयार है?

—एम. एल. नागेश "दीप"
शिक्षक मा शा. ताकू विकास खण्ड केसला

शिक्षक, प्रजातन्त्र की नींव है

पूरा निबन्ध बाँचा। एक साँचे में ढला हुआ लगा। सोचने लगा कि सिक्के के दो पहलू होते हैं। केवल एक पहलू से सिक्के की संज्ञा नहीं होती किन्तु दूसरा पहलू भी समाज में चलने के लिये जरूरी है। प्रजातन्त्रीय समाज में शाला समाज का लघु रूप होती है। यह आदर्श वाक्य नहीं अपितु खुरदरा यथार्थ भी है। इन शालाओं की धुरी होते हैं शिक्षक। सारथी कौन होगा यह तय करता है समाज। धुरी होने के कारण इन्हें निर्णायक की जिम्मेदारी निभानी होती है। हाँ, शर्तें कुछ जरूर हो सकती है। धुरी अलग होकर गुरिल्ला बन जाए यह तथ्य कौंधता है।

प्रजातन्त्र के मंदिर में कलश बनने की होड़ हर ईंट में है। जबकि भट्टे में तपी हुई कई ईटों को नींव की ईंटें बनना होता है। चुपचाप, मूक शहादत देकर। मंदिर की

आधारशीला यही ईंटें होती है। और प्रजातन्त्र में यह ईंटें शिक्षक ही हैं। नींव की ईंट गुरिल्ला बने, गुलेल बने यह बात गले नहीं उतरती।

घास गीली है यह कहकर कब तक हम सुलगने की प्रवृत्ति से बचते रहेंगे।। हमें तो गीली घास को ही सुलगाने का प्रयत्न करना होगा।

—अशोक वाजपेयी
उ. श्रे. शिक्षक
शा. बहु. उ. मा. शाला, हरदा (म. प्र.)

आज गुरू, गुरू नहीं वेतन भोगी है

लेख, एक समग्र विवेचन ना होकर वर्तमान में शिक्षक की स्थिति उजागर करने का प्रयास मात्र है। लेखक वर्तमान में प्रयुक्त शिक्षक शब्द को पुरातनकालीन गुरू शब्द के समकक्ष रख अपना चिन्तन कर रहा है क्योंकि वर्तमान का तथाकथित शिक्षक एक गुरू तो नहीं ही है वह शिक्षक भी नहीं है। केवल एक वेतन-भोगी कर्मचारी है। अतः समग्र तुलनात्मक अध्ययन एक भ्रमित प्रयास है, वह आलोचनात्मक होते हुए भी उनके योगदान को पूर्णतः नकार नहीं सका। उसके चिन्तन का क्षेत्र भी भारतीय परिधियों को लांघकर सुकरात, अरस्तू, चाणक्य, मार्क्स, रूसो, टालस्टाय, डॉ. सनयातसेन, डॉ. हो ची मिन्ह, गाँधी, डॉ. राधाकृष्णन, गुरूदेव रवीन्द्र विभिन्न देशी विद्वानों का ना केवल स्वयं के वरन् विश्वस्तरीय बौद्धिक चिन्तन एवं परिवर्तन में क्रांतिकारी योगदान एवं शिक्षण को भुला बैठा। ऐसे विश्व इतिहास में प्रत्येक देश में अनेकानेक व्यक्ति हुए जो आधुनिक शिक्षक की संज्ञा एवं परिभाषाओं में बांधे ना जाते हुए भी महान शिक्षक-विचारक अथवा अपने दार्शनिक नामों से विभूषित हुए, थे समाज के शिक्षक ही।

स्वयं भारतीय परिप्रेक्ष में आचार्य विष्णुगुप्त (चाणक्य) के व्यक्तित्व में ही ब्रह्मा विष्णु, महेश की विशेषताएँ देखने को मिली है। उन्होंने ब्रह्मा के रूप में अदने से चंद्रगुप्त का निर्माण महान सम्राट के पद पर, विष्णु के रूप में तत्कालीन महान गुप्त साम्राज्य की स्थापना एवं शिव के शुभम् एवं विनाश के अर्थ में "नन्द वंश" का नाश साक्षी है कि तक्षशिला का अर्थशास्त्र एवं राजनीति-शास्त्र का यह शिक्षक युगान्तरकारी, क्रांतिकारी एवं ऐतिहासिक परिवर्तन का साक्षी होते हुए शिक्षक की महान क्षमताओं का मूर्तिमंत ऐतिहासिक उदाहरण है।

आधुनिक परिप्रेक्ष में सभी को शिक्षक मान लेना शब्दार्थ का संकुचित प्रयोग है क्योंकि वेतन-भोगी अधीनस्थता उसकी क्षमताओं के दायरे को सीमित करती हैं। और शिक्षक कभी गुरिल्ला नहीं बन सकता। वह जब जागा है तो साम्राज्यों के पतन हुए हैं, सभ्यता एवं संस्कृतियों के आयाम बदल गए हैं।

महान गुरू या शिक्षक टकसाली नहीं होते, वे युग की देन होते हैं और इस कथन के देश एवं विदेशों के अनेक उदाहरण हमें भूलना नहीं चाहिए।

—यू. एस. त्रिवेदी
व्याख्याता, उ. मा. वि., हरदा (म. प्र.)

माटी का लोंदा नहीं है

उक्त निबन्ध इस दृष्टि से निश्चित ही महत्वपूर्ण है कि हमें अध्यापक से सामाजिक अपेक्षाओं उसके दायित्वों एवं क्षमताओं के बारे में पुनः सही ढंग से सोचने विचारने एवं स्पष्ट मूल्य निर्धारण करने की आवश्यकता महसूस करने का अवसर मिलता है। गाय या अध्यापक में पवित्रता का होना तब तक हमारे लिये कोई अर्थ नहीं रखता जब तक हम यह तय न कर लें कि हमें पवित्रता की अपेक्षा या आवश्यकता है या नहीं। वास्तविकता तो शायद यह कहती है कि एक बड़े कुफ के दौर से गुजर कर अध्यापक अपना पेशा पाता है—ठीक अन्य अधिकांश पेशों की तरह, किन्तु अन्य पेशो की तरह इसे कंकड़-पत्थर-फाइल आदि न देकर जीवन्त मानव-शिशु के मानस-संवर्द्धन और उत्तम आचरण संरचना का दायित्व सौप दिया जाता है। यहाँ भी यथार्थतः उससे कुछ पुस्तकों का पारायण मात्र करना होता है, किन्तु छात्रों में आचरण दोष आ जाने पर दोषी अध्यापक ही होता है।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश की गुरूता शाब्दिक भ्रम-जाल मात्र नहीं; बालक के मानस में विचारों का अंकुरण, सम्पोषण और विषाक्तीकरण (संहार) अध्यापक द्वारा निश्चित ही सम्भव है, यदि सचमुच उससे यह अपेक्षा हो। मेरी लेखक से पूर्ण सहमति है कि अध्यापक के सामने लगाए जाने वाले अतिवादी विशेषण मात्र औपचारिक और अर्थहीन है किन्तु "अध्यापक परिवर्तन का माध्यम हो ही नहीं सकता" या "अध्यापक में इच्छा शक्ति नाम की चीज ही नहीं होती।" विकृत सोच की अभिव्यक्ति है—अध्यापन की आवश्यकता, युग-निर्माण, समाज-शोधन की अभीप्सा जनित है। गुरिल्ला भी ट्रेनिंग (अध्यापन) की आवश्यकता महसूस करता है। ट्रेनिंग का लक्ष्य जितना स्पष्ट और नियोजित होगा परिणाम उतने ही धनात्मक होंगे। अध्यापन का स्वरूप नए परिवेश में अभी तय करना शेष है। अध्यापन में छटपटाहट है, तड़प है किन्तु किंकर्त्तव्य विमूढ़ता भी है। परिणाम छात्रों के क्रिया-कलापों से उजागर हैं। आप उसे मिट्टी का लोंदा समझते रहिये; आपकी व्यवस्था की मिट्टी पलीत होते देर नहीं लगेगी।

मुझे तो सही अध्यापन के मार्ग में राज्य या व्यवस्था के प्रति नासमझ प्रतिबद्धता अधिक घातक लगती है, किन्तु ऐसा न होने देने में व्यवस्था का स्वार्थ आड़े आता है। आवश्यकता इस बात पर निर्णय लेने की है कि क्या ऐसी कोई सीमा निर्धारण सम्भव है, जो नई समाज संरचना की दृष्टि से अध्यापकीय व्यवसाय को मुक्त भी कर सके। अध्यापक में सम्पूर्ण व्यवस्था को शोधन

करने की क्षमता है किन्तु यह कार्य गुरिल्ला-युद्ध से कतई सम्भव नहीं। शिक्षक को आंशिक ही सही, उन्मुक्त वातावरण चाहिये। स्पष्ट लक्ष्य चाहिये और ऐसा संगठन चाहिये जिसके आयोजन में मूल्यों की परख हो, प्रतिबद्धताओं और अशौच तरीकों का कतई प्रश्रय न हो।

उदाहरण अतीत से लें या वर्तमान से व्यवस्था का स्वार्थ सिर चढ़कर बोलता है। उसके रूग्ण या विषाक्त मानस का उपचार जरूरी है, उसे भले ही बिजली के झटके दिये जाये।

गुरिल्ला सर्वाधिक भयावह और भयग्रस्त प्राणी है। अध्यापक का गुरिल्ला होना और ठकुर-सुहाती होना दोनों समान रूप से घातक होगा।

--पी. एन. पाठक, व्याख्याता,
आर. एन. ए. उ. मा. शाला, पिपरिया

कुछ और पत्र ....

जहां विज्ञान की सीमा आ जाती है

अंक 15 के "विज्ञान क्या है" लेख में बताया गया है कि, युवा इंजीनियरों का एक समूह, अपने अनुभवों के सिलसिले से गुजरता हुआ इस सवाल पर पहुँचा कि लोग सब कुछ जानते हुवे भी अपनी समस्यायों को सुलझाने की कोशिश क्यों नहीं करते ? और उन्होंने जवाब ढूंढा कि लोगों के सोचने का तरीका देवीय शक्ति से प्रभावित है, इसलिये उन्हें लगता है कि वे समस्या को हल नहीं कर सकते।

युवा इन्जीनियरों से सवाल है कि क्यों ? लोगों के सोचने का नज़रिया देवीय शक्ति से प्रभावित क्यों है ? शायद इसलिये कि वास्तव में वे अपने आप को कमजोर पाते हैं। लाचार पाते हैं। उनके सोचने का तरीका उनके जीवन के असल हालातों से उभरता है। इस सरहद पर आकर विज्ञान रुक जाता है– वैज्ञानिक सोचने का तरीका अपने अनुभवों को समझाने, उन पर सवाल करने का नजरिया– यह सब, दिमाग के अन्दर की बात नहीं; ताकतवर के खिलाफ अपनी ताकत आजमाने की बात है। जब लोग एक जुट होकर अपने लिये लड़ पायेंगे, जीत पाने की उम्मीद बांध पायेंगे, जब वे अपनी शक्ति का अहसास ले पायेंगे, तब देवीय शक्ति याद नहीं आएगी– खुद बखुद। और सोचेंगे लोग–हम होंगे कामयाब।

--रश्मि पालीवाल

विकल्प पूरे परिवेश का ढूँढना होगा

अंक 16 से 'प्राथमिक शिक्षण व्यवस्था' लेख में शिक्षक के विकल्प की बात कही गई है। यहाँ सवाल है कि "केवल शिक्षक का ही विकल्प क्यों ? शिक्षा के सारे परिवेश का विकल्प क्यों नहीं ? जिसमें स्वयं शिक्षक भी जकड़ा हुआ है। अगर शिक्षा का यही ढांचा रहा तो क्या यह निश्चित नहीं कि हम शिक्षक का जो भी विकल्प खोजेंगे वह भी कालांतर में शिक्षक बन जाएगा।"

श्री बोर्दियाजी ने शिक्षक का समाज व शिक्षा के क्षेत्र में स्थान, शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त समस्त विसंगतियाँ तथा उन्हें दूर करने के अत्यन्त विचारपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किये हैं ? शिक्षक का समाज में जो स्थान है व शिक्षा के क्षेत्र में जो त्रुटियां व्याप्त है उनका उत्तरदायी क्या केवल शिक्षक ही है ? या समूचा सामाजिक ढांचा है। फिर अकेले शिक्षक का ही विकल्प क्यों ढूंढा जाए। अगर सम्पूर्ण कमियों को दूर करना है तो क्यों न उन सभी त्रुटियों को सुधारा जाए जो शिक्षा में व्याप्त दोषों का कारण हैं।

शिक्षक का विकल्प खोजना शिक्षा में आमूल परिवर्तन करने के समान है। शिक्षा में आमूल परिवर्तन होना चाहिए यह सभी जानते हैं पर वह परिवर्तन क्या और किस प्रकार हो यह कोई निष्पक्षतः नहीं सुझा पाता।

--श्रीमती दीपाली शर्मा
उ. श्रे. शिक्षिका, शा. क. उ. मा. शाला
टिमरनी,

कोई नई बात हो

होशंगाबाद विज्ञान पत्रिका के अंक 13 से (फरवरी 1984) से जो अनुवर्तन रपट छपी थी, वही रपट अंक 15 (दिसम्बर 84) में फिर से छाप दी गई है। मेरा सम्पादक से अनुरोध है कि एक बार छपी हुई रपट फिर से न छापें। बेहतर होगा संगम केन्द्रों से रपटें लेकर छापें जो पहले नहीं छपी हों।

एक सुझाव दे रहा हूँ कि पत्रिका में अप्रकाशित एवं मौलिक रचनाओं को ही स्थान दिया जावे। जो रचनाएँ कही पर भी (किसी भी पत्रिका में) प्रकाशित हो चुकी हैं, उनको दुबारा पत्रिका में प्रकाशित नहीं किया जाए। उदाहरण स्वरूप "होशंगाबाद विज्ञान" सितम्बर 84 के अंक में "कविता का पन्ना" में सारी कविताएँ "बाल समाचार" से ली गई हैं। दूसरा उदाहरण भी पढ़िए। इतिहास के पन्नों से शीर्षक विज्ञान का प्रारम्भ "मनुष्य महा-बली कैसे बना" से साभार लिया गया है, जो दिसम्बर 84 के अंक में दिया है।

--लहरीशंकर तिवारी
प्रधानाध्यापक, आई. ई. एम. स्कूल,
भैरोंपुर, तहसील–सिवनी मालवा.

अंक 15 (दिसम्बर 84) से जो अनुवर्तन रपट छपी है वह अंक 13 में छप चुकी थी। इसी तरह अंक 11 (सितम्बर 83) में छपी "कीटों का सहजबोध" कहानी फिर से अंक 15 में छप गई। यह दोनों पुनरावृतियां भूल से हो गई, जिसके लिए हमें खेद हैं। तिवारीजी ने हमें यह गलती बतलाई इसके लिए हम उनके आभारी हैं।

जहाँ तक दूसरे सुझाव का सवाल है कि पत्रिका में मौलिक और अप्रकाशित रचनाएँ ही छपें। सुझाव अच्छा है। परन्तु यहाँ यह स्पष्ट करना चाहेंगे कि पत्रिका का उद्देश्य पाठकों तक सार्थक, उपयोगी और नए विचार पहुँचाना हैं और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पहले प्रकाशित सामग्री को साभार प्रकाशित करने में हम कोई हर्ज नहीं देखते। यद्यपि कोशिश यह होना चाहिए कि हम अपने पाठकों एवं लेखकों से अधिक से अधिक उपयोगी और सार्थक सामग्री लिखवा सकें। **--सम्पादक**

जरुरत है नई शिक्षा नीति की

—जे. पी. नायक

आज नई शिक्षा नीति तैयार करने की बात चल रही है। अतः प्रख्यात शिक्षाविद् स्व. प्रो. जे. पी. नायक का यह लेख प्रकाशित करना सामयिक होगा। इस लेख में उन्होने नई शिक्षा नीति की आवश्यकता महसूस करते हुए बहुत गहराई से शिक्षा की वर्तमान दशा और हमारे समाज का विश्लेषण करते हुए बताया है कि शिक्षा को सार्थक बनाने के लिए क्या किया जाना चाहिए और वह कैसे संभव है।

स्व. जे. पी. नायक अनेक वर्षों तक महत्वपूर्ण पदों पर रहते हुए शिक्षा की नीतियाँ बनाने और उन्हें क्रियान्वित करने के लिए प्रशासक और शिक्षाविद् के रूप में सक्रिय रहे हैं। स्व. प्रो. नायक भारतीय शिक्षा आयोग के सदस्य सचिव भी रहे। वे भारतीय शैक्षिक संस्थान पूना के संस्थापक और निदेशक थे।

आजादी मिलने के प्रारम्भ के दिनों में शिक्षा में क्रांतिकारी परिवर्तन की घोषणाएँ बड़े जोरशोर से की गई। बड़ी-बड़ी घोषणाओं और संकल्पों के बावजूद औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली में सतही हेरफेर के साथ महज विस्तार ही हुआ है। समय की माँग है कि शिक्षा की इस गति की गंभीर समीक्षा की जाय। इस समीक्षा के बाद ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनाने के लिए नए नजरिये से गंभीरतापूर्वक और पूरी ताकत से कोशिश की जाए। इसके लिए जरूरी है—

(1) नई और उचित राष्ट्रीय शिक्षा नीति निधारित की जाये। शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन के बाद 1968 में जो शिक्षा नीति बनाई गई थी वह पहले ही कोई बहुत संतोषजनक नहीं रही और अब तो बासी भी पड़ गई है। 1979 में शिक्षा नीति पर तैयार किया गया मसौदा भी नई केन्द्रीय सरकार को शायद ही पसंद आये।

(2) शिक्षा के विकास का एक व्यापक कार्यक्रम बनाया जाय। जिसे राष्ट्रीय प्रादेशिक और जिले-स्तर पर लागू करने की समयबद्ध योजना हो।

(3) शिक्षा नीति लागू करने के लिए सही किस्म की मशीनरी अथवा ढाँचे का सृजन।

(4) भारी मात्रा में अतिरिक्त साधन जुटाए जायें। पैसों के अलावा बड़े पैमाने पर लोगों को प्रेरित करने के उपाय किए जाएँ। हम यहाँ ऊपर दिए गए चार बिन्दुओं में से पहले पर विस्तार से चर्चा करेगें।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनाने के लिए जरूरी है कि पहले उन बुनियादी समस्याओं को पहचाना जाये जिनका सामना करना है। इसके बाद ही उन समस्याओं का हल ढूंढने का प्रयास किया जा सकता है।

प्रौढ़ और प्राथमिक शिक्षा

मौजूदा शिक्षा प्रणाली की सबसे बड़ी खामी है इसका वर्ग चरित्र। आज की यह प्रणाली उच्च तथा मध्यम वर्ग द्वारा अपने ही हित में रची गई है। जो कि उन्हीं के हितों की पोषक है। आर्थिक रूप से सम्पन्न मात्र 30% ही इसका लाभ ले पाते है। यही 30% लोग प्राथमिक शिक्षा का पूरा-पूरा; स्कूली शिक्षा का 70% तथा उच्च शिक्षा का 80% लाभ ले लेते हैं। जबकि दूसरी ओर गरीबी की रेखा के नीचे जीने वाले लोगों की बड़ी भारी संख्या इस शिक्षा प्रणाली के दायरे के बाहर ही रह जाती है। वह तो स्कूल का मुँह तक नहीं देख पाते। जो जाते भी है वे आज नहीं तो कल स्कूल छोड़ने पर मजबूर हो जाते हैं। इस सबके बावजूद जो स्कूल जाना जारी रख भी पाते हैं वे दूसरों की तुलना में पिछड़े रहते हैं। इनके पिछड़ जाने के लिए दो बातें जिम्मेवार हैं। पहली तो उनके घर का माहौल और दूसरी स्कूल का अलगाववादी रवैया और अपर्याप्त ढाँचा। इस समस्या के इलाज के लिए जो भी तरीके अपनाये गए यानि गरीबों को समान रूप से शिक्षा प्रदान करने की जो कोशिशें की गयी वे उनकी परिस्थितियों के कारण लगभग नाकामयाब ही रही है। जरूरत इस बात की है कि न केवल अधिक प्रयत्न और भारी धन खर्च किया जाय वरन नई रणनीति अपनाई जाये जो हमारी परिस्थितियों से मेल खाती हो।

इस समस्या को जल्दी और संतोषजनक ढंग से सुलझाने के लिए जरूरी होगा कि व्यापक पैमाने पर फैली निरक्षरता को खत्म करने के लिए प्रौढ़ों को शिक्षित करने का काम भी साथ साथ किया जाये। और 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा मुहैया कराई जाये। शिक्षा का लोक व्यापीकरण शिक्षा को सुधारने के लिए आजादी के बाद जो भी कोशिशें की गई है उन सभी में दुर्भाग्य से प्रौढ़ शिक्षा को पूरी तरह नकारा है। पहली बार छठवीं पंचवर्षीय योजना (1978) में निरक्षरता दूर करने के लिए बड़े पैमाने पर कोशिश की गई। हालांकि जिस तरह से यह कार्यक्रम चला उससे मतभेद हो सकते हैं। उसे

सुधार कर ठीक ढंग से चलाने की जरूरत है परन्तु उसकी जरूरत और प्राथमिकता से इंकार करना राष्ट्रहित के खिलाफ होगा। हम उम्मीद करते है कि यह कार्यक्रम बड़े पैमाने पर जिन्दा रहेगा और आने वाले 10-15 सालों में जोरों के साथ आगे बढ़ाया जाएगा। **इस कार्यक्रम की जरूरत न केवल निरक्षरता को दूर करने के लिए है वरन प्रौढ़ों की शिक्षा का एक अच्छा कार्यक्रम लगातार चलते रहने के लिए भी है।**

प्राथमिक शिक्षा के लोक व्यापीकरण की योजना ने पिछले 30 सालों में काफी प्रगति की है। धनी और खाते-पीते परिवारों के लगभग सभी बच्चे प्राथमिक शिक्षा पा लेते हैं। शहरों एवं विकसित इलाकों में कुछ और बच्चे भी स्कूल में पहुँचने लगे हैं। परन्तु समाज में फैली गरीबी और शिक्षा के ढाँचे की अपनी कमजोरियों (जैसे एक निश्चित कक्षा से ही प्रवेश पा सकना, वार्षिक परीक्षा के द्वारा आगे पहुँचना, पूरे समय शाला में उपस्थित रहने की मजबूरी और शिक्षा के ढाँचे की (मध्यम वर्ग की सुविधाओं के अनुकूल बनावट) वजह से समाज के कमजोर तबके के बच्चें आज भी शिक्षा से वंचित हैं। गरीबों के बच्चे जिन्हें पढ़ने की उम्र से ही काम करना होता है तथा पिछड़े इलाकों के बच्चों की शिक्षा की समस्या हल करने के लिए उनकी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए काफी सूझबूझ के साथ अनौपचारिक शिक्षा की योजना बनाना होगी जो गरीब कामकाजी बच्चों को भी दी जा सके। इसके लिए काफी मेहनत और सोच विचार कर नया पाठ्यक्रम, पढ़ाने और सिखाने के लिए नई शिक्षण सामग्री, प्रशिक्षण तथा बहुत अधिक संख्या में ऐसे पार्ट टाइम शिक्षकों की जरूरत होगी जो उसी समुदाय में रहते हैं। साथ ही साथ बहुत अधिक विकेन्द्रित प्रशासकीय एवं वित्तीय प्रणाली भी बनानी होगी। इस तरह का नया कार्यक्रम विकसित करना बहुत बड़ी चुनौती है। इस तरह के कार्यक्रमों को केवल संख्याओं के चौखटे में देखना बहुत भारी भूल होगी। क्योंकि बुरी शिक्षा केवल हानिकारक परिणाम ही दे सकती है। प्रौढ़ शिक्षा तथा प्राथमिक शिक्षा दोनों का रिश्ता सीखने वालों की जिन्दगी से बहुत नजदीक से जुड़ा हुआ हो। उनके उद्देश्य केवल साक्षर बनाने तक ही सीमित न हों। प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य केवल हाईस्कूल तक पहुंचा देना ही नहीं होना चाहिए। प्रौढ़ और प्राथमिक शिक्षा को ऐसी कुशलताएँ विकसित करने का काम भी करना चाहिए जो उसके जीवन को आगे बढ़ाने में मददगार हों। यह शिक्षा उन्हें आधुनिक दृष्टिकोण विकसित करने में भी सहायक हो। दरअसल इस तरह की थोड़ी बहुत कोशिश यदि होती भी है तो, हाईस्कूल और विश्वविद्यालयों में ही होती है। (मालूम नहीं कितनी होती है) यदि पूरे समाज को आधुनिक धारा से जोड़ना है तो प्रौढ़ शिक्षा और प्राथमिक शिक्षा में भी यह प्रयास करना होगा। क्योंकि समाज के अधिकांश हिस्से को तो आगे आने वाले कई सालों तक केवल यही शिक्षा नसीब हो सकेगी। एक और महत्वपूर्ण बात— शिक्षा को हम सामाजिक सन्दर्भों से अलग थलग करके तो देख नहीं सकते, अतः शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ देखना होगा। प्रौढ़ शिक्षा और प्राथमिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण को दूर करने की प्रक्रिया से जोड़ कर क्रियान्वित करना होगा।

दर असल न्यूनतम आवश्यताओं की पूर्ति का कार्यक्रम और शिक्षा को एक दूसरे के अभिन्न अंगों की तरह चलना चाहिए। इस मिले-जुले कार्यक्रम को पंचवर्षीय योजना की आत्मा होना चाहिए। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि सभी को शिक्षा के समान अवसर तभी दिये जा सकते हैं जब आर्थिक समानता के अवसर सभी को मिलेंगे।

स्कूली और उच्च शिक्षा :

स्कूली शिक्षा और उच्च शिक्षा की समस्यायें प्राथमिक और प्रौढ़ शिक्षा की समस्याओं से बहुत अलग है। इनकी समस्यायें जटिल हैं और उन्हें सुलझाना अधिक कठिन है। यहां समस्या कमी की नहीं वरन अधिकता की है। उच्च और मध्यम वर्ग की मांग के अनुसार बहुत अधिक संख्या में स्कूल और महाविद्यालयों की बाढ़ आई है जिन्हें नियंत्रित करना अपने आप में एक समस्या है। दरअसल प्रमुख समस्या घटिया संस्थाओं के अनापशनाप विस्तार की है। इन संस्थाओं में सभी के लिए प्रवेश की खुली नीति के कारण, गरीबों के हितों की आड़ में, मध्यम और उच्च वर्ग का ही अधिक फायदा हुआ है। इन संस्थाओं ने बहुत अधिक मात्रा में मैट्रिक पास और स्नातक पैदा करके पढ़े-लिखे बेरोजगारों की संख्या बढ़ाने में ही अधिक योगदान दिया है। शिक्षकों के स्तर में गिरावट, छात्रों की पढ़ाई में कम होती रूचि, बढ़ती हुई अनुशासन हीनता, चारों तरफ स्तर और गरिमा की गिरावट, लगभग नष्ट होता हुआ प्रशासकीय ढाँचा, परीक्षाओं का गिरता हुआ स्तर जिनका कोई प्रभावशाली इलाज नजर नहीं आता। छात्रों, शिक्षकों और कर्मचारियों की बढ़ती हुई बेलगाम राजनैतिक गतिविधियाँ, हड़तालों और अन्य उपद्रवों की बढ़ती हुई संख्या आदि

प्रमुख समस्यायें हैं। दरअसल उच्च शिक्षा की बढ़ती हुई बीमारी ने देश के कई हिस्सों में उच्च शिक्षा की इमारत को लगभग ढहा दिया है। पिछले सालों में समस्याओं के बहुत से हल सुझाए गए है। उच्च शिक्षा की संस्थाओं की योजना और स्थापना पर कठोर नियंत्रण हो, साथ ही इनमें प्रवेश पर भी नियंत्रण हो जिसका मतलब होगा कि केवल चुने हुए लोगों को ही प्रवेश मिले न कि सभी को। परन्तु इसमें समाज के कमजोर वर्गों के लिए विशेष प्रावधान रखना होगा। यह बहुत जरूरी है कि समाज के पिछड़े वर्गों को उच्च शिक्षा के अधिक अवसर मुहैया कराये जायें। परन्तु यह सुझाव मध्यमवर्गीय लोगों को पसंद नहीं आयेगा क्योंकि इससे उन्हें मिलने वाली सुविधाओं में कमी होगी। कमजोर वर्गों को भी यह स्वीकार नहीं होगा क्योंकि उनका विश्वास है कि आरक्षण के बावजूद भी उच्च शिक्षा के लिए उनके प्रवेश के अवसर कम हो जायेंगे।

व्यावसायिक शिक्षा :

इस क्षेत्र में प्रत्यक्ष हल तो असफल हो गए। कुछ अप्रत्यक्ष हल भी सुझाए गए जैसे दसवीं कक्षा के बाद विद्यार्थियों को व्यावसायिक

शिक्षा के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हल बहुत जल्दी राजनैतिक हो जाते हैं। और यहीं गाड़ी फँस जाती है। जो भी मसला राजनैतिक हो जाता है उसका कठोर निदान संभव नहीं रह जाता।

पाठ्यक्रमों की ओर मोड़ना। नौकरियों में नियुक्ति की नीति बदलना जिससे अच्छी नौकरियों के लिए डिग्री जरूरी न रहे। अध्यापन फीस बढ़ा दी जाए (गरीब छात्रों की मुफ्त में पढ़ाई की सुविधायें बढ़ाने का प्रावधान रखते हुए) विश्वविद्यालय के पढ़ाई के काम को मूल्यांकन या ग्रेड देने के काम से मुक्त रखना। यह काम लोक सेवा आयोग या अन्य स्वायत्त संस्था को सौंपा जा सकता है। शिक्षा के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हल बहुत जल्दी राजनैतिक हो जाते हैं। और यहीं गाड़ी फँस जाती है। जो भी मसला राजनैतिक हो जाता है उसका कठोर निदान संभव नहीं रह जाता। उच्चतर माध्यमिक शालाओं और उच्च शिक्षा के प्रसार को नियंत्रित करने की राजनैतिक मंशा कतई नहीं होती। इस तरह के निर्णय तो 1947 से 1965 के बीच भी नहीं लिए जा सके जबकि राजनैतिक माहौल अधिक शांत था। इस तरह के निर्णय अभी या निकट भविष्य में लेना तो और भी असंभव हो जायेगा। क्योंकि अक्सर इनका हल केवल शिक्षा में न होकर समाज के व्यापक संदर्भ में होगा। आजादी पाने के बाद के दिनों में व्यावसायिक शिक्षा का विकास बहुत तेजी से हुआ। कुछ समय तक तो सब कुछ अच्छी तरह से चला क्योंकि व्यावसायिक शिक्षा का विकास और समूचे विकास की योजना में उचित तालमेल था। उदाहरण के लिए खेती के समूचे विकास की योजना के साथ-साथ कृषि महाविद्यालय प्रस्तावित किए गए। इसी तरह आई.आई.टी., इंजीनियरिंग कालेज और आई.टी.आई. तेजी से हो रहे औद्योगिक विकास के साथ-साथ विकसित हुए। और स्वास्थ्य सेवाओं के साथ-साथ मेडीकल कालेज खोले गए। परंतु यह सुखद स्थिति बहुत देर तक नहीं रही। अब व्यावसायिक शिक्षा के हरेक क्षेत्र में बेरोजगारी शुरू होने लगी। जब तक हमारी अर्थ व्यवस्था बहुत बड़े रूप में नहीं सुधरती, तब तक व्यावसायिक शिक्षा का विस्तार बहुत अधिक कीमत पर बहुत अधिक मात्रा में बेरोजगार विशेषज्ञों की भीड़ ही बढ़ायेगा। यहाँ तक कि इन छात्रों में स्तर सुधारने पर भी बेरोजगारी पर बहुत अधिक असर नहीं होगा। धनी तेल-उत्पादक देशों में हमारे यहाँ के तकनीशियनों की भारी खपत से स्थिति कुछ काबू में है। परन्तु यह हल अस्थायी ही है जो कि अधिक समय तक नहीं चलेगा। शिक्षा के विस्तार के बहुत अधिक दबाव के कारण पिछले दिनों शिक्षा के स्तर की बात को भुला दिया गया। स्तर के गिरावट के भयंकर परिणाम अब उभरकर सामने आ रहे हैं जिनका हल करना एकदम जरूरी और मुश्किल हो गया। स्तर की समस्या के कई महत्वपूर्ण पहलू हैं। जिनमें से जमीन, इमारतों, उपकरणों, पुस्तकालयों और प्रयोगशालाओं का पर्याप्त मात्रा में प्रावधान करना शायद सबसे आसान है। इस समय तो इन्हीं की हालत बहुत खस्ता है। इन कमियों को तो अधिक पैसों का प्रबन्ध करके आसानी से पूरा किया जा सकता है। गंभीर चिंता की बात तो शिक्षा के स्तर में सुधार के अन्य पहलू है, जिनके लिए मानवीय प्रयत्नों और असरकारक सामाजिक परिवर्तन की जरूरत है। जैसे कि—

(1) शिक्षकों के चुनाव के तरीके तथा उनके काम और सेवा की शर्तें सुधारकर, शिक्षकों का स्तर सुधारना, समस्या का एक अंग है।

(2) विद्यार्थियों की प्रेरणा विकसित करना।

(3) सभी शैक्षिक संस्थाओं में कठोर परिश्रम के साथ काम करने का स्थायी माहौल बनाना तथा उपलब्ध सुविधाओं का अधिकतम उपयोग करना।

(4) विभिन्न स्तरों पर सभी संस्थाओं का मिलकर काम करना।

(5) सामाजिक समस्याओं से रिश्ता जोड़े हुए पाठ्यक्रमों का आधुनिकीकरण तथा पढ़ाई और परीक्षा में सुधार और विकास।

प्रतिकूल सामाजिक वातावरण शिक्षकों और विद्यार्थियों (जिनकी गतिविधियों से अक्सर विपरीत परिणामों और राजनैतिक हस्तक्षेप को बढ़ावा मिलता है,) की ओर से उचित पहल के अभाव की वजह से समस्या हल होने के बजाय उलझ जाती है। भाषा की समस्या का अभी भी कोई हल नहीं है, इस समस्या की वजह से शिक्षा के स्तर पर विपरीत असर हुआ है। क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा दी जा रही है, परन्तु शिक्षा के स्तर को कायम रखने अथवा उसे सुधारने की ओर ध्यान नहीं है। अंग्रेजी भाषा का महत्व बढ़ रहा है जबकि उसके उपयोग करने की क्षमता तेजी से घटती जा रही है। हिन्दी

का विकास भी बहुत धीमी गति से हो रहा है। भाषा पढ़ाने की पद्धतियां आज भी बहुत पुरानी है। विद्यार्थी पहलें की अपेक्षा आज भाषा सीखने में बहुत अधिक समय लगाते हैं, जबकि वे सीख बहुत कम रहे हैं। यहां तक कि वे अपनी मातृभाषा भी ठीक से नहीं सीख पा रहे हैं। समस्या के उचित और अकादमिक हल को दुर्भाग्य से राजनैतिक रंगों ने पीछे ही धकेला है, जिससे स्थिति और भी भयानक हो गई है। शिक्षा के दोहरे स्तर की समस्या तो और भी दुखदायी है। कुछ बहुत अच्छी संस्थायें सभी स्तरों पर कायम हैं जैसे आई.आई टी., आई.आई.एम.एम. कुछ प्रतिष्ठित महाविद्यालय विश्वविद्यालयों के कुछ विभाग और बहुत से "अच्छे" स्कूल विशेषकर पब्लिक स्कूल तथा अन्य ऐसे स्कूल जो किंडरगार्टन से ही अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देते है। इन संस्थाओं का लाभ केवल उच्च वर्ग के लोग ही अपनी सामाजिक स्थिति को बनाए रखने के लिए कर पाते है। इस तरह की संस्थाओं के चलने से आम आदमी के लिए चलने वाले सामान्य स्कूलों के सुधार में उच्च वर्ग के लोगों की रही सही रुचि भी खत्म हो जाती है। इन विशिष्ट संस्थाओं को समाप्त करने और सभी के लिए शिक्षा की एक सी व्यवस्था कायम करने, या कम से कम इसमें सुविधाओं से वंचित वर्ग के प्रतिभाशाली बच्चों का प्रवेश संभव बनाने के प्रस्ताव समय-समय पर रखे गए। परन्तु इसमें से कोई भी सुझाव लागू नहीं किए गए। और उनके लागू किए जाने की कोई संभावना भी निकट भविष्य में नजर नहीं आती।

अन्तिम परन्तु महत्वपूर्ण समस्या शिक्षा को लोगों की जिंदगी, आवश्यकताओं और उसकी आकांक्षाओं के अनुरूप ढालना है। इसका मतलब होगा तोता रटंत और अधिक से अधिक जानकारी ठूंसने के महत्व को कम करना। क्षमताओं खासकर उत्पादन से सम्बन्धित क्षमताओं के विकास पर बहुत अधिक ध्यान देना होगा। और भी अधिक महत्वपूर्ण है प्रत्येक व्यक्ति में अपनी परम्पराओं के आवश्यक मूल्यों को विकसित करते हुए समानता, सामाजिक न्याय, वैज्ञानिक मानसिकता, स्वतंत्रता, जनतांत्रिक तथा धर्म निरपेक्षता के आधुनिक मूल्यों का विकास करना। इसके लिए बहुत अधिक मात्रा में बेहतर अकादमिक सामग्री तैयार करना होगी, शिक्षा के गुणात्मक विकास के लिए सघन कार्यक्रम और साथ ही साथ सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रयास करने होंगे। परन्तु इस तरह के प्रयासों के लिए कोई तैयारी नजर नहीं आती।

प्रशासनिक मोर्चे पर भी तस्वीर इतनी ही निराशाजनक है। क्रांतिकारी शैक्षिक परिवर्तन के लिए शिक्षा विभाग और विश्वविद्यालयों के पास भी नेतृत्व प्रदान करने की क्षमता नहीं दिखती। राजनीतिक दलों ने भी शैक्षिक सुधारों में कोई रुचि नही दिखाई है। राज-

सरकार शिक्षा में परिवर्तन की क्रांतिकारी नीति बनाएगी इस बात की प्रतीक्षा करने में कोई तुक नहीं है। यह उस समय भी नहीं हुआ जब परिस्थितियाँ अनुकूल थीं।

नीतिज्ञों ने तो अपने अथवा अपने दलों के हितों के खातिर मनचाहा हस्तक्षेप करके स्थिति को बद से बदतर ही किया है। शिक्षा में जो व्यय किया जा रहा है वह निर्धारित लक्ष्यों और जरूरतों के अनुपात में बहुत ही कम हुआ है। इन कमियों को दूर करने के लिए समर्पित और लम्बे समय के लिए बड़ी तादाद में मानवीय प्रयत्न करने होंगे। परन्तु लोगों को प्रेरित करने तथा उनकी क्षमताओं का दोहन करने के बजाय हमने अक्सर पैसे से वह सब खरीदना चाहा है, जो पैसे से कभी नहीं खरीदा जा सकता। यहाँ से हम कहाँ जाएँ?

महत्वपूर्ण शैक्षिक मुद्दों का यह संक्षिप्त लेखा-जोखा और उस के संभावित हल बहुत ही निराशाजनक तस्वीर पेश करते हैं। इसके लिए बहुत तेजी से सुधार लाने की जरूरत है। शैक्षिक, सामाजिक तथा राजनैतिक कार्यकर्ताओं का देशव्यापी सघन आन्दोलन ही स्थिति को बचा सकेगा। इसी दृष्टिकोण से शिक्षा में सुधार के लिए रुचि रखने वाले लोगों के लिए कुछ सुझाव प्रस्तुत है।

(1) शैक्षिक परिवर्तन और सामाजिक परिवर्तन साथ-साथ होते हैं। वर्तमान परिस्थिति की बुनियादी पीड़ा यह है कि जब हम ऐसे शैक्षिक सुधारों की वकालात करते हैं जिनमें सभी को शिक्षा के समान अवसर मिलें तब हम दरअसल ऐसे राजनैतिक और आर्थिक निर्णय ले रहे होते हैं जिनमें सामाजिक असमानताओं पर प्रहार जरूरी है। इस प्रयास को भी सफलता नहीं मिलती। हमें यह बात सभी संबंधित पक्षों को स्पष्ट कर देना चाहिए कि सबको शिक्षा के समान अवसर दिलाने के प्रयास और समानता पर आधारित सामाजिक परिवर्तन के प्रयास साथ-साथ जरूरी है। इसके लिए जरूरी है उच्च वर्ग को प्राप्त शैक्षिक एवं अन्य सुविधाओं में कटौती तथा गरीबों को जीवनयापन की न्यूनतम सुविधाएँ मुहैया कराना।

(2) सरकार शिक्षा में परिवर्तन की क्रांतिकारी नीति बनाएगी इस बात की प्रतीक्षा करने में कोई तुक नहीं है। यह तो उस समय भी नहीं हुआ जब परिस्थितियाँ अनुकूल थी। यह बहुत ही अच्छा होगा यदि गैर सरकारी लोग इस काम की पहल करे। शिक्षा में नई नीतियों के लिए एक राष्ट्रव्यापी आन्दोलन कर सरकार पर दबाव डालें कि वह आवश्यक कदम उठाए। इस तरह के बाहरी दबावों के कारण सरकार को बाध्य करने की संभावनाएँ कहीं अधिक है बजाय इसके कि सरकार स्वयं इस दिशा में पहल करे।

(3) सामाजिक और राजनैतिक कार्यकर्ताओं द्वारा गरीबों में सामाजिक परिवर्तन के लिए आन्दोलन विकसित करना होगा। उनके कार्यक्रमों के शैक्षिक परिणामों के प्रति उन्हें सजग करना चाहिए। साथ ही साथ शिक्षा के क्षेत्र में कार्य कर रहे कार्यकर्ताओं को शिक्षा के सामाजिक और राजनैतिक परिणामों

(शेष पृष्ठ 14 पर)

–अनिता साहू पिपरिया

* नागफनी का पौधा पानी न देने पर भी सुखता क्यों नहीं है ?

नागफनी का दिखने वाला हरा-हरा भाग उसके तने का परिवर्तित रूप है। ऐसे पौधे कम पानी वाले इलाकों में पाए जाते हैं। नागफनी के अलावा कई अन्य प्रकार के पौधे भी होते हैं। इन पौधों का विकास इस तरह हुआ है कि ये कम पानी मिलने पर भी अपना गुजारा कर लेते हैं।

इनके तनों में न केवल पानी जमा करके रखने की क्षमता होती है बल्कि पानी का खर्च भी कम होता है। इसलिए ये अधिक दिनों तक वर्षा न होने पर भी जीवित रह जाते हैं।

सामान्य पौधे जड़ द्वारा पृथ्वी से पानी प्राप्त करते हैं और पत्तियों से हवा में छोड़ते रहते हैं। इसमें पानी की काफी अधिक मात्रा खर्च होती है। हवा से आक्सीजन और कार्बन-डाईआक्साइड की अदला बदली पत्तियों में बने छोटे-छोटे छिद्रों (स्टोमेटा) के माध्यम से होती है।

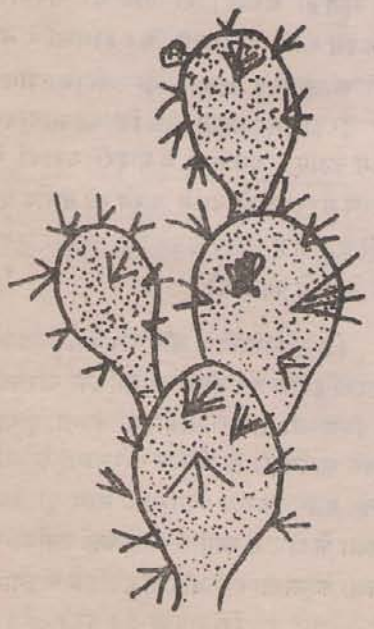

पौधे की पत्तियों में पानी के वाष्प का दाब बाहर के दाब से सामान्य तौर पर अधिक होता है। इससे यह वाष्प बाहर आती रहती है। यह क्रिया तेज हवा में और सूखे मौसम में होती है और सामान्य की अपेक्षा अधिक पानी खर्च होता है। क्या तुम सोच सकते हो ऐसा क्यों होता है ?

पौधों में खर्च होने वाले पानी की मात्रा पत्तियों के क्षेत्रफल पर भी निर्भर करती है। जितनी अधिक पत्तियों की सतह सूर्य के सामने होगी उतना ही अधिक पानी सतह से छोड़ा जाएगा। सामान्य तौर पर पत्तियों से पानी का छोड़ा जाना उसमें भोज्य पदार्थ (लवण) आदि के चालन में भी मदद करता है।

नागफनी के पौधे में पानी का खर्च कम करने के लिए कुछ विशेष गुण नजर आते हैं। इनमें पत्तियाँ छोटे-छोटे काँटे के रूप में होती हैं। इससे पानी छोड़ने वाली सतह का क्षेत्रफल बहुत कम हो जाता है। ये काँटे नागफनी को जानवरों से भी बचाते हैं।

नागफनी का तना जो कई भागों में बंटा होता है सामान्य पत्तियों के सभी काम करता है। वह भोजन बनाता है और हवा से आक्सीजन तथा कार्बन डाईआक्साइड की अदला-बदली करता है। तने का आकार ऐसा होता है कि सूरज की किरणों के सामने पड़ने वाली सतह का क्षेत्रफल कम से कम हो। जैसे बैलन के आकार के गोल तने पर सूर्य की किरणें सीधी कम पड़ती हैं। तने में बने बहुत कम छिद्र ही सूर्य की सामान्य दिशा में होते हैं। इन सब के अलावा पानी की मात्रा बचाने के लिए तने पर एक मोटी मोमनुमा परत होती है। साथ ही तने में पानी जमा करके रखने की क्षमता होती है। इसलिए नागफनी के तने मोटे भी होते हैं।

इन सब विशेषताओं के कारण ही नागफनी को बहुत कम पानी की आवश्यकता होती है और इसीलिए वे काफी अधिक समय तक बिना पानी के जीवित रह सकते हैं जबकि सामान्य पौधों में ऐसी विशेषता तथा पानी बचाने के साधन नहीं होते हैं।

नागफनी मरुस्थल में पाया जाने वाला पौधा है। संसार में इसकी 1,000 से अधिक प्रजातियाँ है। इनमें से कुछ प्रजातियां 10 से 20 मीटर ऊँची होती है। नागफनी की कुछ प्रजातियों में छोटे-छोटे पत्ते भी होते हैं। नागफनी की जड़ें झकड़ा होती हैं। जड़ें बहुत गहरी नहीं होती किन्तु सतह पर ही बहुत फैली होती हैं। वर्षा आते ही ये तेजी से पानी सोखकर तने में जमा कर लेती है। नागफनी में प्रजनन फूलवाले अन्य पौधों की तरह ही होता है। परागण के बाद बीज बनता है। बीज सूखे मौसम में सुप्तावस्था में पड़े रहते हैं। नागफनी की कुछ प्रजातियों के फूल बहुत सुन्दर होते हैं। इनमें फूल आने पर मरुस्थल दूर-दूर तक रंगीन दिखने लगता है।

कुछ बड़े आकार की प्रजातियाँ दो-दो साल तक बिना पानी के जिन्दा रह सकती है।

नागफनी की ही तरह कई अन्य पौधों में प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझने के लिए भोजन व पानी इकट्ठा करने के कई और तरीके हैं। क्या तुम कुछ ऐसे उदाहरण जानते हो ?

*

–हीरालाल राजपूत, शा. मा. शाला बिच्छापुर

* रेलगाड़ी भाप और बिजली के बिना क्यों नहीं चल सकती ?

रेलगाड़ी या कोई भी और वाहन चलाने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता होती है। हर चलती हुई वस्तु में ऊर्जा होती है। इसे गति ऊर्जा कहते हैं। भाप व बिजली से यह ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है। चलते समय वाहन के

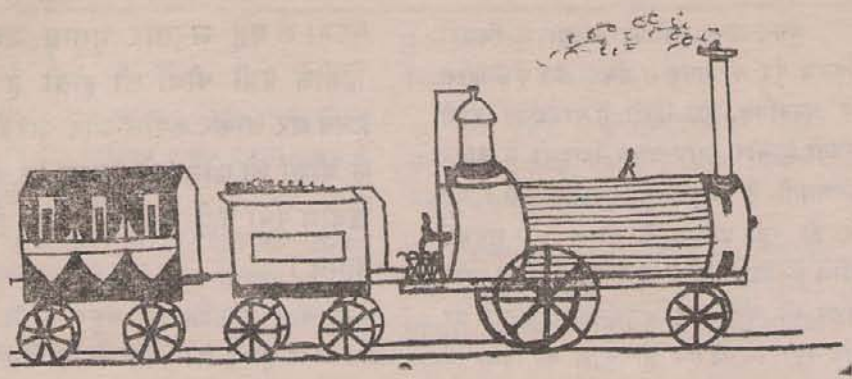

पहियों और जिस सतह पर वह चल रहा है के बीच घर्षण होता है। इस घर्षण से वाहन को चलाने के लिए उपलब्ध ऊर्जा कम हो जाती है। साइकिल चलाते समय भी यदि पेडल मारना बंद कर दें तो वह धीमी होकर रुक जाती है। यदि किसी वस्तु को धक्का दें तो वह भी कुछ देर तक खिसकने के बाद रुक जाएगी। इससे यह स्पष्ट है कि किसी भी चीज, (उदाहरण वाहन) के लम्बे समय तक चलते रहने के लिए उसे ऊर्जा चाहिए नहीं तो वह घर्षण के कारण धीरे होकर रुक जाएगी। घर्षण आदि से वाहन की ऊर्जा कम हो जाती है और वाहन को उसी गति से चलने के लिए ऊर्जा की पूर्ति की आवश्यकता होती है। रूकी हुई वस्तु (वाहन) को चलाने के लिए भी बल व ऊर्जा की आवश्यकता होती है। कोई भी वाहन स्वतः ईंधन खर्च किए बिना या किसी अन्य वस्तु द्वारा संचालित हुए बिना चल नहीं सकता। मानव व अन्य पशु चलते समय और पक्षी व कीड़े उड़ते समय अपने शरीर में संचित ऊर्जा का इस्तेमाल करते हैं। वैसे यह घर्षण उपयोगी भी है। चिकनी सतह पर चलने की अपनी समस्याएँ हैं जिनसे हम सब परिचित ही हैं और कभी न कभी ऐसी सतह पर फिसल कर गिरे ही हैं।

इस प्रकार किसी भी वाहन के घर्षण की उपस्थिति में चलते रहने और चलने की गति में परिवर्तन के लिए इंजिन की आवश्यकता होती है। रेलगाड़ी में यह इंजिन पहले भाप से चलता था। आजकल डीजल एवं विद्युत से चलने वाले इंजिन से भी रेलगाड़ी चलाई जाती है। इनके बिना रेल के इंजिन को ऊर्जा नहीं मिलेगी और वह नहीं चलेगा।

* *

– अभिराज ठाकुर, कक्षा आठवीं, शा. एम. पी. एम. मा. शाला, होशंगाबाद

– अर्जुनसिंह रघुवंशी, कक्षा आठवीं
शा. मा. शाला सांवलखेड़ा

*** मेंढ़क तो फेफड़ों से साँस लेता है, और उड़ते हुए मच्छर और कीड़े आदि खाता है। फिर वह सर्दियों में जमीन के अन्दर जिन्दा कैसे रहता है?**

मेंढ़क सिर्फ फेफड़ों से साँस नहीं लेता। वह फेफड़ों और त्वचा दोनों से साँस ले सकता है। त्वचा से वह पानी में घुली आक्सीजन को प्राप्त कर सकता है। इसलिए वह त्वचा को नम रखने की कोशिश करता है। सर्दियों में जमीन के नीचे वह नम स्थान पर चला जाता है और त्वचा के माध्यम से धीरे-धीरे साँस लेता रहता है। इस समय चूंकि वह अपने शरीर की गतिविधियाँ बहुत कम कर देता है, इसलिए उसे ज्यादा भोजन व हवा की आवश्यकता नहीं होती। पहले खाए हुए भोजन के जमा किए हुए हिस्से से धीरे-धीरे कम मात्रा में प्राप्त होने वाली हवा से ही उसका काम चल जाता है। जमीन के नीचे सुप्तावस्था में कुछ खाता नहीं है।

मेंढ़क जैसे प्राणियों में अपने शरीर का ताप सामान्य बनाये रखने की व्यवस्था नहीं होती। मनुष्य के खून व शरीर का तापक्रम गर्मी या सर्दी दोनों में एक-सा रहता है। सर्दियों में मनुष्य अतिरिक्त भोजन को जला (ऑक्सीडाईज) करके ऊर्जा प्राप्त करते हैं और शरीर को गर्म रखते हैं। गर्मियों में शरीर से पसीना निकलता है जिससे वह ठंडा होता रहता है। मेंढ़क कुछ हद तक ताप बढ़ने पर तो त्वचा को गीला रखकर शरीर को बचाए रखता है परन्तु ताप में बहुत अधिक अंतर को वह सहन नहीं कर सकता। इसीलिए वह सर्दी के शुरू से बसंत के आगमन तक सुप्तावस्था में जमीन के नीचे रहता है जहाँ ताप इतना कम नहीं होता। बसन्त आने पर जब वातावरण का ताप धीरे-धीरे बढ़ने लगता है तब मेंढ़क बाहर आ जाता है। सामान्य तरीके से भोजन ग्रहण करने लगता है और फेफड़ों से भी सांस लेने लगता है। तेज गर्मी के आते-आते मेंढ़क फिर जमीन के नीचे चले जाते हैं और बरसात आने के बाद ही निकलते हैं।

क्या तुम कुछ और ऐसे जानवरों के नाम बता सकते हो जो समय-समय पर सुप्तावस्था में चले जाते हैं?

* *

–शशि, कक्षा दसवीं, रायपुर

*** लकड़ी चुम्बकीय पदार्थ नहीं है। मगर लकड़ी के केस में बंद चुम्बक को चुम्बकीय सुई के पास ले जाने पर चुम्बक सुई को आकर्षित क्यों करता है?**

इस बात से तो सभी परिचित हैं कि कुछ पदार्थ जो चुम्बक से प्रभावित होते हैं उन्हें चुम्बकीय तथा जो प्रभावित नहीं होते उन्हें अचुम्बकीय कहा जाता है। चुम्बकीय पदार्थ सामान्यतः लोहा, कोबाल्ट और निकिल और उनसे बने हुए अन्य पदार्थ; जैसे लोहे के आक्साइड होते हैं। चुम्बक भी आमतौर पर इन्हीं पदार्थों से बने होते हैं।

अचुम्बकीय पदार्थ चुम्बक को प्रभाव डालने या असर डालने में बाधा नहीं पहुँचाते

हैं। उनमें से होकर बल रेखाएँ जा सकती हैं। इसलिए चुम्बक हवा, पानी, लकड़ी तथा अन्य अचुम्बकीय पदार्थों में से होकर अपना प्रभाव डाल सकता है।

इसके विपरीत जब चुम्बकीय पदार्थ को माध्यम के रूप में उपयोग किया जाता है तो चुम्बक को अपना प्रभाव डालने में आसानी की बजाए कठिनाई होती है। होता यह है कि चुम्बक की बल रेखाएँ उस पदार्थ में फैल जाती हैं। उनका बहुत कम हिस्सा पदार्थ से बाहर आ पाता है और इन का प्रभाव चुम्बकीय पदार्थ या वस्तु के पार रखी हुई वस्तु पर न के बराबर होता है। यदि चुम्बक अधिक शक्तिशाली हो या माध्यम छोटा हो तो बल रेखाएँ थोड़ा प्रभाव डाल भी सकती हैं।

अब तुम समझ सकती हो कि लकड़ी के केस में बंद चुम्बक चुम्बकीय सुई को क्यों आकर्षित करता है।

* *

–प्रहलादप्रसाद केवट, ग्राम गनेरा, बाबई
–जे. डी. यादव, सहायक शिक्षक मा. शाला, गनेरा, होशंगाबाद
योगेश सिंह चौहान, हंडी चौक रायगढ़

*** इन्द्र धनुष बारिश के बाद ही क्यों दिखता है? अर्धावृत्ताकार क्यों दिखता है, पूरा क्यों नहीं दिखता ?**

तुम्हें पता होगा कि सूर्य का प्रकाश कई रंगों की किरणों से मिलकर बना है। पर हम इन्हें सात मुख्य रंगों में देख पाते हैं। ये रंग प्रकाश की किरणों का माध्यम बदलने पर (जैसे हवा से पानी में) अलग-अलग कोण पर मुड़ते हैं।

बारिश के बाद हवा में पानी की कुछ मात्रा छोटी-छोटी बूंदों के रूप में रह जाती है। ये बूंदें लगभग एक से आकार की होती है। सूर्य का प्रकाश जब इन पर पड़ता है तो बूंद के अन्दर जाने पर मुड़ जाता है। प्रकाश में उपस्थित विभिन्न रंगों की किरणें भी अपने-अपने विशेष कोण पर मुड़ जाती हैं और इस प्रकार अलग-अलग दिखने वाले सात रंगों में बट जाती हैं।

इन किरणों में से लाल रंग की किरणें सबसे कम और बैंगनी रंग की किरणें सबसे अधिक मुड़ती हैं।

अलग-अलग रंगों की पट्टियों में बिखरी किरणें बूंद की सतह से टकरा कर कुछ हिस्से में अपवर्तित, कुछ हिस्से में परावर्तित होती रहती है और अलग-अलग बिन्दुओं से बाहर निकलती हैं जिनसे इंद्रधनुष बनता है। बूंद में हो रही प्रक्रिया के कारण वह लगभग शीशे के प्रिज्म की तरह कार्य करती है और बहुत सी बूंदों पर अलग-अलग कोणों पर पड़ रही किरणें एक ही कोण की दिशा में निकलती हैं। ये सब बूंदें एक गोलाकार रेखा पर होती हैं इनसे निकलने वाली किरणें एक कीपनुमा आकृति बनाती हैं। इसका शीर्ष (सिरा) देखने वाले की आंख पर होता है। इसी वजह से रंग धनुषाकार में दिखते हैं।

हर देखने वाले की आँख पर एक अलग शीर्ष होता है इसलिए हर व्यक्ति एक प्रकार से अलग इंद्रधनुष देखता है। कई बार एक की जगह दो इंद्रधनुष एक-दूसरे के ऊपर, थोड़ा हटे हुए दिखलाई पड़ते हैं। इनमें से ऊपर वाला इंद्रधनुष निचले से थोड़ा फीका होता है। यह दूसरा इंद्रधनुष सूर्य-किरणों के बूंदों के भीतर एक की जगह दो बार, परावर्तन के कारण बनता हैं।

इंद्रधनुष जैसे रंगों को तुम घर पर देख सकते हो। इसके लिए एक कटोरे-नुमा बर्तन लो। उसे ऐसी जगह रखो जहाँ सूर्य का प्रकाश पड़ रहा हो। इस बर्तन के भीतर, किनारे पर थोड़ा तिरछा टिकाकर एक दर्पण रखो। दर्पण की चमकीली सतह किसी दीवार की ओर हो और उस पर पड़ने वाली सूर्य की किरणें परावर्तित होकर दीवार पर पड़ रही हों। अब बर्तन में इतना पानी डालो कि दर्पण के जिस हिस्से से किरणें परावर्तित हो रही हैं वह डूब जाए। अब दीवार पर पड़ने वाले प्रतिबिम्ब को देखो। यदि प्रतिबिम्ब साफ न दिखे तो दर्पण को थोड़ा ऊपर या नीचे खिसकाओ। इस प्रतिबिम्ब को सफेद कागज पर भी देखा जा सकता है।

* *

विष्णु प्रसाद, शा. मा. शा. बाजनिया, टिमरनी

*** हमने खरीफ की फसल का अवलोकन किया। हमने देखा कि अरंडी और कपास के पौधों की जड़ मूसला है। गुरुजी के कहे अनुसार मूसला जड़ द्विबीज पत्री पौधों की होती है। हमने घर जाकर कपास और अरंडी के बीजों को खोला तो पाया कि वे द्विबीज पत्री नहीं हैं। सही क्या है बताएं।**

हर बीज में बढ़ते हुए अंकुर के लिए भोजन जमा होता है। यह भोजन उसके बीजपत्र में या भ्रूणपोष में जमा होता है। इस कारण कुछ बीजों में बीजपत्र मोटे व स्पष्ट होते हैं और कुछ में नहीं। जिन बीजों में बीजपत्र स्पष्ट नहीं होते हैं उनमें भोजन भ्रूणपोष में जमा होता है। ऐसे बीजों के उदाहरण है मक्का, गेहूँ आदि। मटर, चना, सेम आदि ऐसे बीज है जिनमें भोजन बीजपत्र में होता है।

जड़ व बीजों पर तुम्हारा एक अवलोकन सही है और एक गलत। कपास और अरंडी दोनों की ही जड़ मूसला होती है। यह दोनों ही द्विबीजपत्री पौधे हैं। अरंडी का बीज अन्य सामान्य द्विबीजपत्री बीजों चना, मटर आदि से अलग होता है, क्योंकि इसमें एक भ्रूणपोष होता है जिसमें अंकुर बढ़ने के लिए भोजन जमा रहता है। अरंडी के बीज को खोलने का तरीका कक्षा 6 की बाल वैज्ञानिक में दिया गया है।

बीज पत्र में भोजन जमा न होने के कारण वे बहुत ही पतली पत्तियों के रूप में दिखते हैं और भ्रूणपोष को ध्यान से काटने पर देखे जा सकते हैं। अरंडी के बीज को अच्छी तरह (एक-दो दिन) भिगोने के बाद ही खोला जा सकता है। बाहरी आवरण उतारने के बाद उसमें भ्रूणपोष और उसके अंदर भ्रूण मिलेगा। भ्रूणपोष को [illegible] पर अंकुर और दो बीजपत्र जुड़े हुए दिखेंगे। कपास के बीज को भी खोलकर देखा जा सकता है कि उसमें कितने बीजपत्र है। क्या विभिन्न पौधों की जड़ और बीजों को देखकर उनके बीजपत्रों की संख्या का अनुमान लगाया जा सकता है?

रपट-1

माध्यमिक शाला छिदगांव में आज अनुवर्तन हेतु उपस्थित हुआ। प्रधान पाठक से मुलाकात नहीं हो पायी।

इस शाला में आज विज्ञान की लिखित परीक्षा चल रही थी। कक्षा सातवीं का आज पर्चा था। अन्य कक्षाएँ भी अर्धवार्षिक परीक्षा दे रही थीं।

कक्षा सातवीं के विज्ञान के पर्चे को देखा। इस पर्चे को विज्ञान शिक्षक ने सेट नहीं किया था। जब उनसे यह पूछा कि आपने पर्चा सेट क्यों नहीं किया तब उन्होंने बताया कि प्रधान पाठक ने प्रत्येक कक्षा के सभी विषयों के छपे छपाये पेपर्स की व्यवस्था कर ली है अतः उन्हें सेट करने की आवश्यकता नहीं थी।

अब प्रश्न उठता है कि विज्ञान शिक्षक के द्वारा प्रश्न पत्र तैयार क्यों नहीं किया गया और दूसरा प्रश्न यह कि प्रश्न पत्र विज्ञान के प्रश्न पत्र को सेट करने की नियमावली से बिल्कुल भिन्न था। बच्चे बहुत से प्रश्नों का उत्तर सीधे किताब से या उत्तर पुस्तिका से नकल करके दे सकते थे। एक और त्रुटि यह पायी गई कि विद्यार्थियों की लिखित (विज्ञान) परीक्षा में भी उत्तर पुस्तिकाएँ नहीं रखने दी गई।

संगम केन्द्र अथवा विज्ञान इकाई के माध्यम से श्री शर्मा जी से यह पूछा जाना चाहिए कि उन ने ऐसा क्यों किया है। कक्षा आठवीं के प्रश्न पत्र में भी इसी प्रकार की त्रुटियाँ है।

कक्षा सातवीं के प्रश्न त्रुटिपूर्ण ढंग से सेट किए गए हैं। जैसे:--

(1) कठोर जल को मृदु जल बनाने की दो विधियां लिखो।

(2) झकरा और मूसला जड़ों के कार्यों में दो प्रमुख अन्तर बताइये तथा दोनों के दो-दो नाम भी लिखिए।

(3) सरल एवं संयुक्त पत्तियों वाले तीन-तीन पौधों के नाम लिखिए।

इस प्रकार अनेक प्रश्न हैं।

संलग्न हैं कक्षा सातवीं एवं आठवीं की अर्धवार्षिक परीक्षा के प्रश्न पत्र एवं उन पर (×) अंकित किया गया है जो प्रश्न निर्धारण नियमावली के प्रतिकूल थे।

कक्षा छटवीं में भी सम्भवतः इसी प्रकार का प्रश्न पत्र दिया गया होगा और उसमें भी अनेक त्रुटियां होंगी।

परीक्षा के कारण छात्रों से चर्चा नहीं हो सकी। शेष विज्ञान किट स्टाक व्यवस्थित पंजियों में अंकित किया गया है। किट सामग्री पर्याप्त है।

संगम केन्द्र प्राचार्य द्वारा समस्त माध्यमिक शाला के प्राचार्यों को यह सुझाव दिया जाना चाहिए कि वे विज्ञान परीक्षा से संबंधित समस्त सूचना पत्रों का पुनरावलोकन करें एवं भविष्य में होने वाली परीक्षाओं के प्रश्न पत्रों को सेट कराते समय एवं परीक्षा सम्पन्न कराते समय उन नियमों का अनिवार्य रूप से पालन करें जिससे विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के उद्देश्य को पूर्ण करने में गति एवं उचित दिशा दी जा सके। इस माध्यमिक शाला के एक विज्ञान शिक्षक प्राथमिक विभाग में अध्यापन करते हैं। उनकी सेवाएँ कक्षा आठवीं एवं सातवीं में विज्ञान शिक्षक हेतु ली जानी चाहिए जबकि उन्हें मात्र छठवीं का विज्ञान पढ़ाने को दिया गया है। भविष्य में उन्हें कक्षा सातवीं एवं आठवीं का अध्यापन आवश्यक रूप से दिया जाना चाहिए ता कि उनके विज्ञान प्रशिक्षण का लाभ भी छात्रों को अधिक से अधिक मिल सके।

—उमेश चौहान
शाला संगम केन्द्र, टिमरनी

रपट-2

माध्यमिक विद्यालय नेवरी

कक्षा-6

अनुवर्तक– डॉ. आर.एन. स्याग

मैं 11.40 पर शाला पहुंचा। विज्ञान शिक्षक शाला के काम से बाहर गये थे, जल्दी ही लौटने की संभावना थी।

विज्ञान काल खण्ड के प्रारम्भ होने पर प्रधानाध्यापक की स्वीकृति से कक्षा में गया। बच्चों से पूछने पर बाल वैज्ञानिक के अध्याय 1 से 7 तक तथा 9 से 11 तक व 13 तक में अध्याय उनके द्वारा पढ़े जाने की सूचना मिली। अध्याय 16 एवं 17 अभी चल रहे हैं। अध्याय 5 से सम्बन्धित परिभ्रमण (खरीफ एवं रबी) में एक परिभ्रमण हुआ है। एक अभी करना है। विज्ञान पढ़ना कैसा लगता है? इस प्रश्न के उत्तर में बालकों ने बताया कि बहुत ही अच्छा लगता है, बड़ा मजा आता है प्रयोग में चर्चा करके उत्तर निकालने में। यह विज्ञान बहुत सरल लगता है।

शिक्षक के आने तक मैंने बच्चों से कुछ अध्यायों की अवधारणा पर कुछ प्रश्न पूछे। प्रश्न इस प्रकार थे–

(i) श्याम पट पर 0.1, 0.01, 0.001 लिखकर सबसे बड़ी व सबसे छोटी संख्या बताने को कहा। छात्रों ने सही उत्तर दिये।
दशमलव सम्बन्धी दो अन्य प्रश्नों के उत्तर भी बच्चों ने ठीक बताये।

(ii) श्याम पट पर विद्युत का एक परिपथ बनाया।

यह पूछने पर कि क्या परिपथ में बल्ब जलेगा। सभी छात्रों ने कहा, नहीं जलेगा। कारण भी सही बताया कि परिपथ पूरा नहीं है। तार के क और ख सिरों को मिलाने पर बल्ब जलेगा।

क और ख के बीच लोहे का तार लगाने पर क्या बल्ब जलेगा। सभी ने कहा हाँ तथा कारण में लोहे का विद्युत सुचालक होना भी बताया।

क और ख के बीच काँच की छड़ लगाने पर भी कारण सहित सही उत्तर प्राप्त हुआ।

इसी प्रकार परिपथ में सैल हटाकर सैल के एक सिरे पर दोनों तार जोड़ने पर? आदि प्रश्नों के उत्तर बालकों ने सही दिये।

मैंने बालकों से पूछा कि आपके दिमाग में कोई प्रश्न, जिसका उत्तर आपको मालूम नहीं हो तो पूछें। तुरन्त एक छात्र ने खड़े होकर कहा 'जीव जगत में विविधता' अध्याय में हमने एक झाड़ की सौ पत्तियां तोड़कर बारीकी से देखा। हमें कोई भी दो पत्ती एक सरीखी नहीं मिली।

लेकिन प्रयोग–2 (दो कुत्तों की तुलना) में मैंने (छात्र) देखा कि हमारे घर के पास कुत्ते के दो पिल्ले हैं जो एक सरीखे हैं। पास बैठे 2–3 छात्रों ने भी उस छात्र की बात पर सहमति व्यक्त की। वे कुत्ते के पिल्ले लाकर दिखाने को भी उत्सुक थे। मेरे कहने पर तुरन्त दो छात्र उन पिल्लों को ले आये। इसी समय शिक्षक भी आ गये। सभी छात्रों में बड़ा उत्साह था। शिक्षक ने धागा एवं स्केल मँगवाया। शिक्षक ने कहा यह पिल्ला 'क' है तथा दूसरा पिल्ला 'ख' है। अब आप दोनों पिल्लों को ध्यान से देखों तथा अपने अवलोकन तालिका में लिखो। बच्चों ने दोनों पिल्लों को ध्यान से देखना शुरू किया। एक छात्र ने कहा 'क' पिल्ले के सिर पर थोड़े से बाल सफेद हैं जबकि 'ख' के नहीं। एक अन्य छात्र ने बताया 'क' पिल्ले की पूँछ के सफेद सिरे की लम्बाई 'ख' पिल्ले के पूँछ के सफेद सिरे की लम्बाई से ज्यादा है। बच्चों ने दोनों की पूँछ की लम्बाई नापी, कान की लम्बाई, चौड़ाई नापी, पिल्लों के शरीर की लम्बाई नापी। बच्चे अपने अवलोकन लिख भी रहे थे।

एक बच्चे का ध्यान पिल्लों के पन्जे की ओर गया। उसने कहा कि 'क' के अगले पैरों के पंजों पर (जो कि सफेद रंग के हैं) कुछ काले धब्बे हैं, जबकि 'ख' के ऐसा नहीं है। इस प्रकार बच्चे दोनों पिल्लों का बारीकी से अवलोकन करते जा रहे थे। जब अवलोकन पूरा हो गया तब मैंने बच्चों से पूछा क्या ये दोनों पिल्ले एक सरीखे हैं तब सभी ने कहा, नहीं। तब मैंने पूछा पहले तो आप कह रहे थे एक सरीखे हैं और अब कह रहे हैं नहीं हैं, ऐसा क्यों? तब एक छात्र ने कहा पहले हमने इन दोनों को इतने करीब से एवं इतनी बारीकी से नहीं देखा था। बच्चों के चेहरों पर चमक थी। उन्हें अहसास हुआ कि बारीक अवलोकन लेना कितना महत्वपूर्ण है।

मैंने फिर से सवाल किया आप ने कोई ऐसी दो जीवित वस्तुएं देखी हैं जो हू–ब–हू एक समान हों। तब एक छात्र ने कहा मक्खी, दूसरे ने कहा इल्ली। तब शिक्षक ने पूछा क्या आपने मक्खी एवं इल्ली भी इतनी बारीकी से देखी हैं जितनी बारीकी से पिल्लों को या पत्तियों को देखा था। शिक्षक ने कहा आप हैंड लैन्स से इन जन्तुओं को बारीकी से देखकर अपना निष्कर्ष बताना। इस पर सभी सहमत थे।

एक छात्र ने कहा कि मेरे पिताजी एवं चाचाजी जो एकदम एक समान हैं। वे दोनों कपड़े अलग-अलग पहनते हैं। कपड़ों से ही हम पहचानते हैं। तब मैंने पूछा आपकी दादीजी उन्हें कैसे पहचानती हैं? तब उस छात्र ने कहा वे तो उनकी आवाज से पहचान लेती हैं। चर्चा में सभी को मजा आ रहा था लेकिन इतने में कालखण्ड समाप्त होने की घण्टी बज गई। शिक्षक ने उस छात्र से कहा किसी दिन तुम्हारे पिताजी एवं चाचाजी को थोड़ी देर के लिए शाला में आने के लिए कहना ताकि हम सब उन्हें ध्यान से देख सकें एवं समानता तथा अन्तर जान सकें। इस पर वह छात्र सहमत हो गया।

काल खण्ड समाप्त होने के बाद में प्रधान अध्यापक से मिला एवं कक्षा 6 की चर्चा का सार उन्हें बताया। वे खुद बहुत प्रभावित हुए कि बच्चे इतनी बारीकी से चीजों को देखते-परखते हैं।

[टिप्पणी—शिक्षक महोदय ने कक्षा में बहुत ही अनौपचारिक वातावरण बना रखा है। छात्र सहज भाव से प्रश्न पूछते है, चर्चा करते हैं। उनमें किसी प्रकार का संकोच या घबराहट नहीं है।]

बोझिल पाठ्यक्रम : फूल बोझ नहीं होते तो फूलों पर बोझ क्यों ?

ये हल्के–फुल्के फूल सबको अच्छे लगते हैं न! और लगे भी क्यों नहीं। रंग-बिरंगे सुहावने, मन भावने, चटकीले, और मस्त जो हैं! यही हाल बच्चों का भी है। वे घरों को अपनी किलकारियों से, खेल के मैदानों को चुस्ती और फुर्ती के खेलों से तथा विद्यालयों को पठन-पाठन से भरकर चारों ओर जीवन्त वातावरण बनाते हैं।

ऐसे इन्सानी फूलों पर बोझ भला कौन बर्दाश्त करेगा? पर हकीकत तो यही है कि इन पर काफी बोझ लाद दिया गया है। एन. सी. ई. आर. टी. के एक अध्ययन दल ने जो तस्वीर पेश की है वह वास्तव में दिल को दहलाने वाली है। इस दल ने दिल्ली, महाराष्ट्र, हरियाणा एवं केरल के छात्रों पर पाठ्यक्रम के बोझ पर विस्तृत अध्ययन किया। नतीजा क्या निकला? प्रति 100 छात्रों में से दिल्ली में 81, महाराष्ट्र में 77, हरियाणा में 80 तथा केरल में 58 छात्र विज्ञान और गणित के पाठ्यक्रम को भारी मानते हैं। इधर छात्र परेशान, तो उधर अध्यापक परेशान। स्कूलों में निर्धारित काम नहीं हो पाने के कारण शिक्षक गृह-कार्य देकर अपना बोझ तो हल्का कर लेते हैं पर छात्रों को उसे पूरा करने के लिये 4 से 6 घंटे काम करना होता है। गृह-कार्य का आदर्श समय 1½ घंटे माना गया है। 1½ घंटे की जगह 6 घंटे कार्य करेंगे तो फिर कब खेलेंगे और कब मनोरंजन करेंगे। ऐसे में व्यक्तित्व के विकास की बात तो सोचना भी बेमानी है। 24 घण्टे किताबों में रहने वाले किताबी कीड़े तो बन सकते हैं, पर विकासमान व्यक्तित्व वाले अच्छे नागरिक नहीं हो सकते। अध्ययन दल ने निष्कर्ष निकाला कि गृह-कार्य की इस अधिकता का कारण यह है कि एक तो अध्यापकों के पास गृह-कार्य की नियमित योजना नहीं होती और दूसरे अध्यापन के समय एवं पाठ्यक्रम में असंतुलन होता है। प्रत्येक अध्यापक अपने विषय को सबसे अधिक महत्वपूर्ण मानता है और चाहता है कि विद्यार्थी परीक्षा में अच्छे अंक लाये। सही बात तो यह है कि अध्यापक अपने विषयों को तो महत्व देते हैं पर छात्रों के व्यक्तित्व के विकास में उनकी कोई खास दिलचस्पी नहीं होती। पूरी की पूरी शिक्षा-प्रणाली परीक्षा की धुरी पर घूमती है। परीक्षा की परिक्रमा करने वालों को शिक्षा के सिद्धान्तों एवं व्यक्तित्व के विकास से भला क्या लेना-देना है? उन्हें तो चिड़िया की आँख दिखती है और तीर वहीं चलाना है।

—नया शिक्षक से साभार

पुनर्निर्धारण क्यों करते हैं ?

—डॉ. हृदयकांत दीवान

अंक 16 में न. पा. पूर्व मा शाला हरदा के शिक्षक श्री श्यामलाल मुकातीजी का लेख "प्रश्न पत्रों के बनाने बाबत कुछ सुझाव" प्रकाशित हुआ है। श्री मुकाती जी के लेख से अंकों के पुनर्निर्धारण के संबंध में कुछ भ्रम उत्पन्न होता है जिसे स्पष्ट कर रहे हैं एकलव्य होशंगाबाद फील्ड सेन्टर के कार्यकर्त्ता हृदयकांत दीवान।

मुकातीजी द्वारा अपने पत्र में जो मुद्दे उठाए गए हैं उन पर तात्कालिक प्रतिक्रिया लिख रहा हूँ।

जहाँ तक प्रश्नों के रहस्यमय व पेचीदा होने का मुद्दा है उनके इस अहसास को मानने या न मानने का कोई आधार मेरे पास नहीं है। हाँ, मेरे ख्याल से सवालों को जानबूझकर पेचीदा बनाने का प्रयास कोई प्रश्न बनाने वाली टोली नहीं करती होगी। फिर भी यह संभव है कि प्रश्नों के उत्तर खोज पाना सरल न हो। फिर मैं यह नहीं मानता कि सभी प्रश्न इतने मुश्किल होते हैं कि छात्र उन्हें हल कर ही न पाएं।

वैसे प्रश्न पत्र बनाने वाले खुद भी कक्षा आठ के शिक्षक ही होते हैं जो प्रश्नों का स्वरूप व स्तर निर्धारित करते हैं। यह अपेक्षा वाजिब है कि उनके द्वारा बनाया गया प्रश्न पत्र सामान्यतः कक्षा आठ के स्तर का ही होगा।

किसी भी ऐसी परीक्षा के लिए, जिसमें विभिन्न बच्चों द्वारा सीखा गया ज्ञान, उपलब्धि व कौशल का आकलन कर उनकी कमजोरी व सबलता पहचानना है, कुछ प्रश्न औसत स्तर से थोड़े मुश्किल व कुछ काफी सरल होने आवश्यक हैं।

सैंपलिंग के बारे में मुकातीजी की जानकारी सर्वथा गलत है। इस प्रक्रिया में अंक पुनर्निर्धारण का आधार यह बिलकुल नहीं है कि सबसे अधिक अंक उन प्रश्नों पर रखें जाएं जो विद्यार्थियों द्वारा सबसे अच्छी तरह से किए गए हैं। होशंगाबाद विज्ञान के अंक सात व नौ में पुनर्निर्धारण की पूरी प्रक्रिया को व्यवस्थित ढंग से समझाने का प्रयास किया गया है। पुनर्निर्धारण में दोनों प्रकार के प्रश्नों (जो किसी भी छात्र ने नहीं किए या सभी छात्रों ने कर लिए हैं) के अंक कम हो जाते हैं। इस प्रकार कठिन सवाल देकर बाद में उनके अंक कम करना या कठिन प्रश्नों को निकाल देना पुनर्निर्धारण का उद्देश्य नहीं है। पुनर्निर्धारण में वास्तव में प्रश्नों के पूर्वनिर्धारित अंकों को बदला जाता है। पर सामान्यतः इतना अधिक नहीं कि सवाल ही निकाल दिया जाए। यदि सवाल ही गलत है या अस्पष्ट रूप में पूछा गया है तो उसे निकाल देना उचित है। परन्तु ऐसा बहुत कम बार ही होता है।

प्रश्नों के अंकों का पुनर्निर्धारण दो आधार पर किया जाता है—

1. विद्यार्थियों में अन्तर करने की क्षमता यानी वह प्रश्न होशियार और कमजोर छात्रों में अन्तर कर पाता है या नहीं। कहीं ऐसा तो नहीं है कि प्रश्न बहुत ही सरल बन गया हो और होशियार क्या, कमजोर क्या सभी छात्रों ने उसका हल कर दिया हो। यदि आठवीं कक्षा के छात्रों में से $5 \times 10 = ?$ पूछा जाए तो सभी शायद उत्तर लिख दें। पर ऐसे सवाल का आठवीं की गणित परीक्षा में कोई औचित्य नहीं। ऐसे प्रश्नों के नम्बर पुनर्निर्धारण में कम हो जाते हैं। यहाँ यह पूछा जा सकता है कि ऐसे प्रश्न बनाए ही क्यों जाते हैं। प्रश्न पत्र निर्माण में सभी सावधानियों के बावजूद गलती होने की संभावना है। वैसे $5 \times 10 = ?$ अतिश्योक्ति भी है बात को स्पष्ट रूप में परिभाषित करने के लिए।

2. क्या विद्यार्थी उसे कर पाते हैं या नहीं? कहीं प्रश्न इतना जटिल या अस्पष्ट तो नहीं बन गया है कि वह विद्यार्थियों की समझ से बाहर है। जाहिर है, ऐसे प्रश्नों को कोई भी हल नहीं कर पाएगा और ऐसे प्रश्न का आठवीं बोर्ड में होने का कोई मतलब नहीं है। ऐसे प्रश्नों के भी नम्बर कम हो जाते हैं। वास्तव में सवाल व प्रश्न पत्र बनाने वाले शिक्षक इस बात का ध्यान रखते हैं और बहुत कम सवाल ही ऐसे होते हैं जिनके अंक बहुत ज्यादा बदलते हैं।

प्रश्नों के निर्माण में पूरी सावधानी के बावजूद किसी भी प्रश्न पत्र में गलती या अस्पष्टता आना सम्भव है। सामान्य तौर पर ऐसे प्रश्नों में या तो सभी को अंक दे दिए जाते हैं या फिर अन्य प्रश्नों में प्राप्त अंकों के आधार पर उसी अनुपात में अंक जोड़ दिए जाते हैं। पुनर्निर्धारण इसको करने का एक व्यवस्थित सांख्यकीय तरीका है। ऐसा नहीं है कि अत्यधिक कठिन या गलत सवाल सिर्फ पूर्व माध्यमिक परीक्षा में बनते हों। विश्वविद्यालयों की परीक्षा में भी कई बार ऐसी स्थिति सामने आ जाती है।

मुकातीजी का प्रश्न पत्रों में कुछ अन्य प्रकार के सवाल रखने का सुझाव है। उन्होंने यह प्रस्ताव दिया है कि पुस्तक व कापी के महत्व को बच्चों तक पहुँचाने के लिए कुछ "अपेक्षाकृत सरल प्रश्न" (जो पुस्तक पर या छात्रों द्वारा किए गए प्रयोगों पर ज्यादा स्पष्ट रूप से आधारित हों) देने चाहिये। उन्होंने इन सवालों को सीधी जानकारी पूछने या कापी से उतार देने से अलग बनाने का प्रयास भी किया है। इन सवालों के प्रकार के बारे में सोचा जाना चाहिए और इनके लिए निर्धारित अंकों के

(शेष पृष्ठ 14 पर)

गलत दिशा

—सुबोध कुमार श्रीवास्तव

"महोदय" प्रायमरी स्कूल के एक कार्यक्रम में बच्चों को संबोधित कर रहे थे, "आज के बच्चे कल के नागरिक हैं। बच्चे देश के भविष्य हैं।" बच्चों, तुम लोगों को हमेशा सच बोलना चाहिए। अपने से बड़ों का आदर करना चाहिए। मन लगाकर पढ़ना चाहिए और कभी कोई गलत कार्य नहीं करना चाहिए।

भाषण के बीच में एक आठ-नौ वर्ष की उम्र का लड़का फूट-फूटकर रोने लगा। भाषण में व्यवधान उत्पन्न हुआ। मौके पर नियुक्त पुलिस सतर्क हो गई और बच्चों की भीड़ को चीरती हुई लाठियाँ लेकर उस बच्चे की ओर दौड़ी। "महोदय" के चेहरे पर परेशानी के कोई भाव नहीं थे। उन्होंने पुलिस से कोई कार्यवाही न करने की अपील की और उस बच्चे को अपने पास मंच पर बुलाकर पूछा, "बेटे, तुम क्यों रो रहे हो? क्या तुमको भूख लगी है? मैं तुम्हें खाने के लिए काजू दूँगा।"

बच्चा सहमा हुआ था। वह सिसक रहा था। किसी तरह साहस कर उसने कहा, "मुझे भूख नहीं लगी है। आज मुझे खाने में दाल और रोटी दोनों ही चीजें मिली हैं। फिर उसने बड़े आश्चर्य से "पूछा, काजू कैसा होता है?"

"महोदय" ने कुछ सख्त स्वर में पूछा, "तो तू रो क्यों रहा था?" लड़के ने कहा, हम लोगों को जो बातें बतलाई हैं, वे मुझे बहुत अच्छी लगी। मेरे गुरुजी भी मुझे इसी तरह की अच्छी-अच्छी बातें सिखलाते हैं।

"लेकिन तुम रो क्यों रहे थे? इसमें रोने की क्या बात हुई?" महोदय झुंझला कर बोले।

बच्चे ने बड़े भोलेपन से कहा, "मेरे गुरुजी फटे कपड़े पहिनकर स्कूल आते हैं उनके जूते के तल्ले घिस गए हैं। फटे हुए भाग से उनका अंगूठा बाहर निकला रहता है। उनके पास साईकल भी नहीं है। आप हमारे स्कूल तक कार पर आए हैं और आपकी कार के आगे पीछे दर्जनों कारें और भी हैं। आपके सफेद कपड़े बर्फ से दिख रहे हैं और उनसे इत्र की सुगन्ध उड़ रही है। आपके सफेद कपड़े में मैं अपना चेहरा देख सकता हूँ। मेरी समझ में यह बात नहीं आ रही है कि मेरे गुरुजी फटेहाल क्यों है? जो बातें मुझे आपने आज बतलाई हैं, वे बातें और उससे भी अच्छी-अच्छी बातें तो वे हम लोगों को रोज ही बतलाते हैं। फिर आप में और मेरे गुरुजी में इतना अन्तर क्यों है?"

इस घटना के तीसरे दिन ही उस बच्चे को पढ़ाने वाले शिक्षक को निलम्बित कर दिया गया। शिक्षक पर आरोप था कि वह बच्चों को गलत दिशा दे रहा है।

(लघु आघात से साभार)

(पृष्ठ 7 का शेष)

के प्रति भी सजग रहना चाहिए और प्रोढ़ शिक्षा अथवा प्रायमरी शिक्षा के कार्यक्रमों द्वारा सामाजिक और राजनैतिक कार्यकर्ताओं के काम को मजबूत करना चाहिये। शिक्षा में काम करने वाले सामाजिक तथा राजनैतिक कार्यकर्ताओं के मिले-जुले प्रयास से एक जन-आन्दोलन उभरेगा जो शिक्षा में क्रांतिकारी परिवर्तन के लिए भूमिका तैयार करेगा।

(4) यदि यह प्रक्रिया शान्तिपूर्ण और अहिंसक रहती है तो साथ ही साथ उच्च और मध्यम वर्ग में भी यह आन्दोलन फैलाया जाय जिससे वे हकीकत से वाकिफ हो सके और स्वयं ही अपने द्वारा किए जा रहे शिक्षा एवं अन्य सामग्री और सेवाओं के विशिष्ठ उपभोग को कम करके योजनाबद्ध तरीके से समतावादी समाज और शिक्षा व्यवस्था को स्वीकार करें।

(5) साथ ही साथ व्यवस्था के बाहर इन आन्दोलनों के दबाव से शिक्षा व्यवस्था के अन्दर शैक्षिक सुधार के लिए सघन आन्दोलन विकसित होना चाहिए। जागरूक संस्थाएँ, शिक्षक, प्रशासक और छात्र शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुए नेतृत्व प्रदान कर सकते हैं और लगातार बहुत परिश्रम और समर्पण की विशिष्टता स्थापित कर सकते हैं। वे यह सब तभी कर सकते हैं जब उन्हें अपने आप में पर्याप्त आत्मविश्वास हो तथा इसके लिए बहुत अधिक प्रयास करें।

कुछ लोग इस कार्यक्रम को अवास्तविक और काल्पनिक कह सकते हैं परन्तु वर्तमान परिस्थितियों में इसके अलावा शायद ही कोई विकल्प है। केवल यही एक बात है जो सत्यानाश की ओर बढ़ती हुई जड़ता को तोड़ सकती है।

(पुनर्निधारण का शेष)

बारे में भी। उनमें शायद कुछ फेर बदल करना पड़े किन्तु इस सुझाव के मुख्य तत्व के बारे में सोचना चाहिए। यदि और शिक्षक तथा स्रोतदल के सदस्य अपने मत भेजें तो इस प्रकार के सवालों से होने वाले संभावित फायदे, नुकसान व होशंगाबाद विज्ञान के उद्देश्यों से तालमेल का आकलन किया जा सकेगा।

—हृदयकांत दीवान
होशंगाबाद

विरम्भ

—राधावल्लभ त्रिपाठी

—दादा, मुन्ने को लेने जाओ न।

—नहीं जाते।

—अम्मा ने कहा है।

—कहने दो। कल हमारा मंथली टेस्ट है जनरल साइंस का। पढ़ रहे हैं।

सुमीत की गुर्राहट रसोई घर से अम्मा ने सुन ली। —पाँच मिनिट में कितना पढ़ लेगा तू? —वे वहीं से चिल्लाई—छोटा भाई है आखिर, उसकी खातिर थोड़ी सी तकलीफ उठा ले तो....

—तुम बीच-बीच में मत बोला करो। जाना होगा, चले जायेंगे...., यह रोज-रोज की बेकार की झंझट।

—साढ़े चार हो रहे हैं.... सविता ने ताक में रखी घड़ी की तरफ देखकर कहा—अभी बाउजी आ जायेंगे, तो पड़ जायेंगे दो थपाड़े....

—ठहर जा देख—सुमीत ने अपनी जनरल साइंस की किताब पटक दी, और दांत पीसते हुए उठ कर सविता की चोटी पकड़ उसकी पीठ में कस कर दो मुक्के जमा दिए। सविता की चीख पुकार के साथ ही रसोई घर से अम्मा के ये शब्द तार सप्तक में गूंजे—बड़के, बहोत हाथ चलने लग गये हैं तुम्हारे। आने दो अभी बाउजी को...

सविता रोते-रोते बड़े भाई को शाप देने लगी—जो हमें मारेगा, भगवान करे उसका हाथ टूट जाय, अगले जनम में वह कोढ़ी हो....

अम्मा रसोईघर से बाहर निकल आयीं। सविता का हाथ पकड़ कर उसे अपने साथ अन्दर घसीटती हुई कहने लगीं—तू ही क्यों गयी थी उससे झगड़ा करने? चल आलू छील दे चल के....

सुमीत ने घड़ी में देखा—चार बजकर बीस मिनिट। मुन्ने के स्कूल की छुट्टी ठीक साढ़े चार पर होती है। सपाटे से चलकर वह मजे में टाइम पर पहुँच सकता है। वैसे तो मुन्ना खुद भी स्कूल से यहाँ तक चला आता है। एक बार उसे पहुँचने में देर हो गई थी, तो अकेला आ ही गया था घर। मगर अम्मा ने रोज-रोज की यह बेगार सुमीत के साथ लगा रखी है। मुन्ने का स्कूल उसके घर से दूर बिल्कुल भी नहीं है। पर हर बार सुमीत को स्कूल के दरवाजे पर पहुँच कर लगता है—वह किसी दूसरी दुनिया में आ गया है—अपने घर से बहुत दूर।

अपने मुहल्ले की गली से निकलते ही सड़क के उस पार मैदान के सामने सैंट पाल स्कूल की ऊँची पक्की इमारत दिखाई देने लगती है। वह रोज स्कूल के दरवाजे से ही मुन्ने को ले आता है, अन्दर वह सिर्फ एक बार गया था। अन्दर पहुँचकर उसे लगा था—वह बहुत छोटा हो गया है....

वह दरवाजे पर पहुँचा, तब तक छुट्टी

की घंटी बज चुकी थी, और स्कूल बस दरवाजे पर तैयार खड़ी थी। लड़कों के झुण्ड बस की तरफ दौड़ रहे थे। उनके टीन के बक्से डूबते सूरज के मद्धिम आलोक में चमचमा रहे थे। सुमीत बस से कुछ दूर इमली के पेड़ की ओट में खड़ा हो गया, ताकि वे लोग उसे न देखें। उन लड़कों में बहुत से उसकी उम्र के भी हैं, पर न जाने क्यों वह उनसे कतराता है। उसे हमेशा यह लगता रहा है कि ये लड़के उसके जैसे एकदम नहीं हैं।

बस से जाने वाले लड़के बस में भरने लगे थे। सुमीत ने उकताहट महसूस करते हुए दरवाजे पर नजर दौड़ाई। पहली कक्षा के लड़कों के बीच मुन्ना आ रहा था। सुमीत को उन छोटे-छोटे लड़कों को देख कर और भी चिढ़ होने लगी। इन्हीं में से एक लड़के ने एक बार उसे दिखा कर मुन्ने से पूछा था--यह तुम्हारा सर्वेंट है क्या?—और मुन्ने जी को सर्वेंट का मतलब मालूम नहीं था, इसलिए उन्होंने कह दिया—हाँ। स्कूल से लौटते वक्त जब उन्होंने सुमीत को यह बात बताते हुए सर्वेंट का मतलब पूछा था, तो जवाब में सुमीत के हाथों एक थप्पड़ खाकर मुन्ने जी पुंगी बजाते हुए घर पहुँचे थे।

मुन्ने को जब से इस स्कूल में दाखिल कराया गया है, सुमीत को उस पर अक्सर झुंझलाहट होने लगी है। मुन्ना उससे उमर में सात साल छोटा है, कुछ समय पहले तक वह उसे अपनी गोद में खिलाता रहा है। अपने छोटे भाई पर उसे कितनी ममता है, यह वह ही जानता है। पर सामने की बड़ी इमारत जब रोज सबेरे मुन्ने को निगल कर शाम को उगलती है, तो वही मुन्ना उसे बदला हुआ लगने लगता है। वैसे उसने शुरू से ही मुन्ने को इस स्कूल में दाखिल कराने का विरोध किया था, पर उसकी कौन सुनता, अम्मा की बड़ी इच्छा थी कि मुन्ने को अंग्रेजी स्कूल में ही भर्ती कराया जाय।

मुन्ना अपने साथियों से टाटा-बाय-बाय करता हुआ उसकी तरफ बढ़ा। सुमीत को देखकर वह मुस्कुराया, पर उसकी मुस्कान में थकान, ऊब और यंत्रणा का आभास होता था।

—मेडम ने कल से पी.टी. शू पहन कर आने को कहा है। —उसने सुमीत को सूचना दी।

सुमीत को फिर चिढ़ हो आयी।—तो हमसे क्या कह रहे हो? चल कर बाउजी से कहना।—उसने कहा और मुन्ने के हाथ से बस्ता ले लिया। सस्ते केनवास का बस्ता किताबों और कापियों के बोझ से अभी फटने लगा था। उसका वजन लाद कर चलने में सुमीत को और भी कुढ़न होने लगी। इतना बोझ लाद कर तो उसे अपनी क्लास में भी नहीं ले जाना पड़ता।

मुन्ना आज क्लास में जो कुछ हुआ था, उसका ब्यौरा देने लगा था। शालू और नितिन में आज मारा-मारी हो गयी। मेडम ने दोनों को अलग-अलग बिठा दिया। इंटरवल में शालू ने फ़िर नितिन को पीटा। मेडम ने दोनों की रिपोर्ट सर के पास भेज दी है, फिर उनके गार्जियन-लोगों के पास रिपोर्ट जायेगी....

सुमीत अनमना होकर सुनता रहा। उसके स्कूल में भी लड़के आपस में एक दूसरे से लड़ते हैं, मारपीट करते हैं, पर इस तरह की छोटी-छोटी मार-पीट पर रिपोर्ट कौन करे? सक्सेना सर क्लास में प्रश्न लिखने को देकर ऊँघने लगते हैं। मिश्रा सर पीरियड गोल करके ट्यूशन पढ़ाने चले जाते हैं। मुन्ना के स्कूल में सचमुच लड़कों पर ध्यान दिया जाता है पर....

—दादा, जमादार क्या होता है?

मुन्ने के इस अटपटे सवाल से उसके सोच की लड़ी टूट गयी।—क्यों, तुमसे किसने कहा?

—मेडम कह रही थीं—विनीत, तुम ये जमादार जैसे कपड़े पहन कर क्यों आये?

सुमीत की निगाह छोटे भाई के कपड़ों पर चली गयी। कोयला खतम हो जाने की वजह से कल मुन्ने के कपड़ों पर लोहा नहीं किया था उसने। इसी बात पर कल अम्मा से भी कहा-सुनी हो गयी थी। कहने लगी प्रेस में इतना ज्यादा कोयला कैसे उठ रहा है इन दिनों? उसने भी तड़ाक से जवाब दे

दया था—प्रेस भी तो रोज हो रही है मुन्ने के कपड़ों पर।

अम्मा कुछ तो भी बड़बड़ाती रही थीं।

मुन्ने के पास एक ही जोड़ यूनिफार्म है, जिसे हर दूसरे दिन शाम को साबुन से धोने की ड्यूटी सविता की है, और उस पर लोहा करने की सुमीत की। कल लोहा नहीं हो पाया था, तो यूनिफार्म को तह करके पिताजी के तकिये के नीचे रख दिया गया था।

मुन्ने के कपड़ों की सलवटें अब उसकी आँखों में गड़ रही थीं। मुन्ने के इससे तो उसका स्कूल अच्छा है। कोई यूनिफार्म का चक्कर नहीं है उधर। कुछ भी पहन कर जाओ।

—क्या होता है जमादार, बताओ न। —मुन्ना फिर पूछ रहा था।

—कुछ नहीं—सुमीत ने टाल दिया।

घर पहुँचे, तो सविता दरवाजे पर खड़ी थी। मुन्ने को देखते ही उसने चिढ़ कर कहा—आज एक ही दिन में कर लाये न ड्रेस गन्दी। रोज-रोज धोने की ड्यूटी नहीं है हमारी। हर दूसरे दिन धोने की ड्यूटी है, हाँ।

तभी बाउजी की साइकिल की खड़-खड़ सुनाई दी। बरामदे में साइकिल खड़ी करते हुए उन्होंने कहा—कल तो इतवार है। सुमीत और हम तालाब पर जायेंगे कपड़े धोने।

जब से अम्मा को गठिया की तकलीफ शुरू हुई है, घर के बहुत से कामों की सविता, सुमीत और बाउजी ने आपस में ड्यूटियाँ लगा ली हैं।

—बाउजी, जमादार क्या होता है?— उनके सायकिल टिका कर अन्दर आते ही मुन्ने ने सवाल जड़ दिया।

—जमादार माने स्वीपर बेटा। स्वीपर आया है न तुम्हारी किताब में?

—स्वीपर माने मेहतर?

—हाँ, वही।

मुन्ना ने एक बार सुमीत दादा की तरफ देखा, सुमीत ने मुँह फिरा लिया। मुन्ने ने अपनी यूनिफार्म जल्दी से उतार कर फेंकी और जोर-जोर से रोने लगा।

—अरे, क्या हो गया? —रसोईघर से निकल कर अम्मा ने पूछा।

—मेडम ने कहा कि तुम जमादार जैसे कपड़े पहन कर आते हो।

—मुन्ने ने रोते-रोते बताया।

सुमीत ने देखा—अम्मा ने शिकायत, क्रोध और पीड़ा की दृष्टि से बाउजी को देखा। वे मुँह फिरा कर बोले—इस पहली को एक जोड़ यूनिफार्म और सिलने को दे देंगे।

इसके साथ ही सविता विद्रोहभरी आवाज में बोल पड़ी—हाँ, मुन्ना के लिए ड्रेस बन रही है अब। हमारे पास एक भी कपड़ा ठिकाने का नहीं है स्कूल के लिए। रोज लड़कियाँ चिढ़ाती हैं हमें—

—जा, आटा गूँथ दे। —अम्मा ने थकी आवाज में उसे आदेश दिया।

—काम करने के लिए हम हैं, और कपड़े सिलवाने के लिए मुन्ना।

—सविता बड़बड़ाने लगी।

—अम्मा जो कह रही हैं वह करो पहले—बाउजी ने उसे कठोर स्वर में आदेश दिया।

सविता चुपचाप रसोईघर में चली गयी।

—कल मुन्ने की ड्रेस पर प्रेस नहीं की थी क्या? —बाउजी ने सुमीत से जवाब-तलब किया।

—कोयले ही कहाँ थे? पिछले हफ्ते अम्मा से कह दिया था कि कोयले मंगवाने हैं—

—कोयले का खर्च चार गुना हो गया है अब।—अम्मा ने कहा।

—तो बिजली की प्रेस क्यों नहीं खरीद लेते? —सुमीत ने झड़क कर कहा—हमसे भी नहीं होता रोज-रोज कोयले सुलगाने का काम....बाउजी चुपचाप जूते उतारने लगे। अम्मा ने मुन्ना से कहा—चल कपड़े पहन ले घर के।

—और इससे अभी पूछ लो जूते-वूते नये पहन कर आने के लिए क्या कहा है मेडम ने। नहीं तो कह देगा कि हमने कह तो दिया था सुमीत दादा से।

—क्या कहा था मुन्ना मेडम ने?

कुछ नहीं। —मुन्ने की हिचकियाँ अभी थमी नहीं थीं।

—क्यों, पी.टी. शू के लिए कह नहीं रहा था अभी?

—बता न क्या कहा था मेडम ने? — अम्मा मुन्ने को डपट कर पूछने लगीं।

—कल से पी.टी. शू पहन कर आना। इंटरवल में पी.टी. होगी।

—मुन्ने ने रोने जैसी आवाज में जल्दी से दुहरा दिया।

—अभी इसी महीने तो नये जूते दिलवाये थे, अब ये पी.टी. शू का क्या चक्कर है? —बाउजी ने परेशान होकर कहा।

अम्मा गठिया के दर्द से कराहने लगीं। मुन्ने ने स्टूल पर चढ़ कर अलगनी पर टंगे अपने चड्ढी-बनियान खुद ही उतारे और पहनने लगा।

सुमीत को मुन्ने पर दया आने लगी। **इस सब में मुन्ने का क्या कसूर है? उसने कब कहा था कि हमें इतने ऊँचे स्टण्डर्ड के स्कूल में भर्ती कराया जाय? कसूर अम्मा और बाउजी का है, उन्हें अपनी हैसियत देख कर मुन्ने को स्कूल में भर्ती कराने की बात सोचनी चाहिए थी....**

अम्मा और बाउजी एक दूसरे की तरफ देखते हैं और आँखें चुरा लेते हैं। इसमें उनका भी क्या कसूर है। उन्होंने तो यही चाहा था कि उनका सबसे छोटा बेटा बहुत तीव्र बुद्धि वाला है, तो उसे शुरू से ही अच्छी शिक्षा मिले। कई कई दिनों तक मुन्ने को उसे ऊँचे स्टेंडर्ड के स्कूल में मार-

मार जबरदस्ती भेजते रहे थे वे, जबकि वह सुमीत दादा के साथ उसके स्कूल में जाने के के लिए मचलता रहा था। अभी भी मुन्ना पूरी तरह से अपने स्कूल से एडजस्ट नहीं कर पाया है—लड़के उसे आगे की सीट पर बैठने नहीं देते, मेडमें उस पर हँसती हैं—

—हमने तो पहले ही कहा था कि मत भर्ती कराओ उस स्कूल में—सड़ा स्कूल—सुमीत कह रहा था।

सुमीत के मन में उस स्कूल के खिलाफ नफ़रत का उफान बढ़ता ही जा रहा है। उसे सबसे ज्यादा गुस्सा आता है मुन्ने के क्लास की चश्मे वाली मेडम पर। उसी ने वह जमादार वाली बात कही होगी। सुमीत भड़भड़ाता हुआ उस मेडम के सामने जा पहुँचता है, और तमक कर पूछता—है—तुमने मुन्ने से ऐसी गन्दी बात क्यों कही? जमादार होगी तुम—तुम्हारी जबान गंदी है—

चश्मे वाली मेडम चश्मे में से दप-दप करती आँखों से उसे घूरती है और कहती है हू आर यू?

सुमीत सकपकाने लगता है। वह मेडम की तरह तड़ाक से अंग्रेजी में नहीं बोल सकता।

—मैं उसका बड़ा भाई हूँ। वह कमजोर आवाज में कहता है। —सो व्हाट? —मैडम कठोर स्वर में कहती है, और गायब हो जाती है.....

—चल भूख लगी हो, तो एक रोटी खा ले।—अम्मा मुन्ने से कह रही थीं।

—हम रोटी नहीं खायेंगे, हम ब्रेकफास्ट करेंगे—ब्रेकफास्ट लाओ हमारे लिए—

—यह क्या चीज होती है?—अम्मा चकित होकर पूछती हैं। उनका बेटा आजकल अजीब-अजीब शब्द सीख कर आने लगा है, जिनके आगे वे अपने आप को परास्त अनुभव करती हैं।

—मैडम हर रोज लड़के से पूछती हैं—व्हाट डिड यू हैव इन यौर ब्रेकफास्ट टुडे। ब्रेकफास्ट नहीं दोगी, तो हम स्कूल नहीं जायेंगे हाँ—

सुमीत की आंखों के आगे मुन्ने के स्कूल की कक्षा पहली का दृश्य खुल जाता है।

—विनीत, डिड यू हैव योर ब्रेकफास्ट टूडे?—चश्मे में से घूरती हुई मैडम पूछती है।

—नो मैडम।—मुन्ना घबरा कर खड़ा हो जाता है और जवाब देता है। क्लास के लड़के हँस पड़ते हैं।

अम्मा सविता को बुलाकर कह रही थीं—इसके लिये दूध में रोटी चूर कर ब्रेकफास्ट बना दे।

दूध में रोटी चूरने से ब्रेक फ़ास्ट नहीं बनता। मैडम कहती हैं—दूध में कार्नफ्लैक डाल कर खाओ।

—क्या होता है कार्नफ्लेक? —सविता ने सुमीत से पूछा।

—अनाज का भूसा।—सुमीत ने कहा। वह पहले ही मुन्ने के मुँह से यह शब्द सुनकर डिक्शनरी से उसका मतलब देख चुका था।

—भूसे को दूध में डाल कर कैसे खाते होंगे?—सविता ने फिर शंका प्रकट की।

—इसकी मैडम को भूसा ही खाने की आदत है।—सुमीत ने कहा—मुन्ने जी, रोटी खाना हो तो खाओ चुपचाप और होमवर्क करो बैठकर, नहीं तो बेंच पर खड़े रहना पड़ेगा क्लास में।

—तो मेरा बस्ता तो उतार दो—यू ब्लडी बास्टर्ड।

सुमीत ने एक क्षण मुन्ने को अचरज से घूरा, फिर तड़ से एक तमाचा उसके गाल पर जड़ कर कहा—गाली दे रहा है।

मून्ने जी का भोंपू जोर से बज उठा।—सुमीत हम तुम्हारी ऐसी कुटाई करेंगे कि—अम्मा चिल्लाई—अब क्यों मारा उसको बिना वजह के?

—बिना वजह के मारा? उसने हमें ब्लडी बास्टर्ड क्यों कहा?

—तो क्या हुआ?—अंग्रेजी के उस शब्द का मतलब न समझ कर अम्मा ने डूबती आवाज में कहा।

—क्या हुआ? मतलब भी समझती हो? मां की गाली दे रहा है यह।

—हमें क्या मालूम था—अम्मा ने और भी कमजोर आवाज में कहा फिर उन्होंने कड़क कर मुन्ने से कहा—कहां से सीख कर आया है यह गाली? क्यों रे?

—हमारे स्कूल में पी.टी. वाले सर लड़कों से कहते हैं। मुन्ने ने सफाई दी। बाउजी यह सब सुनते हुए सुमीत की टेबुल के सामने बैठकर चुपचाप कुछ लिखने लग गये थे। लिखना खतम करके कागज तह करते हुए उन्होंने मुन्ने से पूछा—सुमीत दादा के स्कूल में भर्ती करा दें तुझे? जायेगा? मुन्ने ने अचरज से उन्हें देखा, फिर कहा—हां। उन्होंने तह किया हुआ कागज सुमीत को देते हुए कहा—टी.सी. की अर्जी लिख दी है। परसों सोमवार को इसे मुन्ने के स्कूल में देकर टी.सी. निकलवा लेना है।

---

* लेखक के संग्रह 'पूर्वरंग'—चित्रलेखा प्रकाशन 147, सोहबतिया बाग, इलाहाबाद से साभार।

"हमने किसी योजनाबद्ध विधि से यह जानने की कोशिश नहीं की है कि यदि प्रौढ़ शाला के अध्यापक हम होते तो हम क्या करते। क्या ही अच्छा होता कि जो इस हुक्म को देते हैं, वे किसी भी क्षेत्र में स्वयं भी कुछ दिन प्रौढ़शाला चलाते, या कम से कम इस कार्य को करने वाले की क्या समस्या है, उसको धैर्य से सुनते और उसका हल निकालते।"

—बाल गोविन्द तिवारी

दिवास्वप्न

पिछले अंक में 'दिवा स्वप्न' उपन्यास का एक अंश प्रकाशित किया था। गिजुभाई ने अपने उपन्यास 'दिवा स्वप्न' में स्कूल में किए जा सकने वाले कुछ प्रयोग का जिक्र किया है। उपन्यास का नायक लक्ष्मीशंकर स्कूल की तोता रटंत प्रणाली, उबाऊ और अव्यवहारिक पाठ्यक्रम, डाँट-डपट और आतंक के माहौल के बदले बच्चों को प्यार और विश्वास के सहारे उनकी क्षमताओं का विकास करता है। प्रस्तुत है "दिवा स्वप्न" उपन्यास का एक और अंश जिसमें बताया गया है कि बच्चों को धार्मिक उपदेश देने का क्या असर होता है।

एक दिन हमारी पाठशाला में एक परमहंस साधु आये। साथ में प्रधानाध्यापक भी थे। प्रधानाध्यापक ने उनका परिचय देते हुए मुझ से कहा—"ये महाराज एक अच्छे धर्मोपदेशक है। विद्यार्थियों से इन्हें बड़ा प्रेम है। हरएक राज्य की पाठशालाओं में छात्रों को उपदेश करने की सुविधायें इन्हें प्राप्त है। आज ये साहब की चिट्ठी लेकर अपनी पाठशाला के छात्रों को उपदेश करने आये हैं।"

मैंने उन्हें आदर-पूर्वक नमस्कार किया, कुर्सी दी और कहा—"तो भगवन्, आप अपना कार्य आरंभ कीजिये।"

मेरे लड़के तो महाराज के मुंडे हुए सिर और मुंह की ओर देख रहे थे। उनका दुबला-पतला शरीर, कान्तिपूर्ण मुख-मुद्रा और हाथ का कमण्डल, लड़कों के लिए एक कुतूहल की वस्तु बन गई थी।

मैंने विद्यार्थियों से कहा—"देखो बच्चों! स्वामी जी उपदेश करेंगे, तुम सब ध्यान देकर सुनो।"

लड़के अब तो मेरी आज्ञा समझने लगे थे। वे शान्ति से बैठ गये।

स्वामीजी उपदेश करने लगे—"विद्यार्थियों! इस जगत् में ईश्वर ही सबसे बड़ा है। यह दुनिया उसी ने पैदा की है। उसी के कारण यह जगत् है और वही हमारा आदि कारण है।"

इस तरह ईश्वर की महिमा कही जाने लगी। मैं चुप बैठा था। मेरे विद्यार्थी शान्त थे। लेकिन धीरे-धीरे उनमें अशान्ति फैल रही थी। कोई आलस्य मरोड़ने लगा, कोई पट्टी पर कंकर से रेखायें खींचने और बिन्दु बनाने लगा, कोई किताबें उलटने-पलटने लगा, किसी की आँखें कुछ-कुछ लाल होने होने लगीं, कोई एक अँगुली दिखाकर बाहर गया। एक गया, उसके पीछे दूसरा भी गया। एक-दो छात्र आपस में बातें करते जा रहे थे। मैंने उन्हें चुप रहने का इशारा किया और वे चुप हो गये।

स्वामी जी से मैंने विनय-पूर्वक कहा—"महाराज, कोई सरल-सी बात कहिये, जिसे ये छात्र समझ सकें।"

वैसे, स्वामी जी बड़े सरल स्वभाव के थे। तत्काल उन्होंने हिन्दू-धर्म की, उसके ग्रन्थों की और ग्रन्थों के विषय की चर्चा शुरू की। लेकिन छात्रों को उसमें भी मजा न आया।

मैं मन ही मन विचार कर रहा था—क्या धर्मोपदेश इसी तरह किया जाता है? क्या धर्म का तत्व, जो अति गूढ़ है और जिसे जानने के लिए सारा जीवन खपा देना पड़ता है, इसी तरह समझाया जा सकता है? क्या यही धर्म की शिक्षा और धार्मिक ज्ञान है? क्या धर्म का यह ज्ञान छूछा और निरूपयोगी नहीं होता?

सचमुच स्वामी जी बड़े गंभीर भाव से सब बातें कह रहे थे, उनके विचार में उनका यह कार्य आवश्यक और पवित्र था। वे अपने कर्त्तव्य का ठीक ही पालन कर रहे थे। लेकिन लड़कों के लिए तो यह सब भैंस के आगे बीन बजाने-जैसा ही था।

अब स्वामी जी ने श्लोकों का अर्थ समझाना शुरू किया। लड़कों को वह भी सुनना पड़ा। फिर उन्होंने उस अर्थ को तख्ते पर लिखा और लड़कों से कहा कि वे उसकी नकल कर लें। इसके बाद स्वामी जी ने कहा—"इन श्लोकों को तुम प्रतिदिन प्रातः उठकर पढ़ा करो, साँझ को सोते समय भी इन्हें पढ़ो। इससे तुम्हारी बुद्धि बढ़ेगी, बल बढ़ेगा, तेज की वृद्धि होगी।"

मेरी कक्षा के दस-दस, बारह-बारह वर्ष के वे लड़के! उन्हें क्या पड़ी थी, धर्म की और श्लोक की? लेकिन उन्होंने श्लोक लिखे और उनके अर्थ भी लिखे।

मेरे विचारों की शृंखला टूटी नहीं थी—क्या धार्मिक शिक्षा के लिए दूसरी कोई जगह नहीं रही कि अब वह पाठशालाओं में दी जा रही है? पहले तो देवालयों में प्रवचन हुआ करते थे, और घरों में माता-पिता तदनुसार अपना व्यवहार रखते थे। घर के ये आचार-विचार लड़कों के लिए धार्मिक शिक्षा का काम देते थे। लेकिन अब या तो लोगों को धार्मिक प्रवचन सुनने की फुरसत नहीं है या बड़े-बूढ़े उन्हें सुन-सुनकर अब इतने तृप्त हो गये हैं या और ही कुछ हुआ है कि जिससे अब यह काम पाठशाला का अंग बन रहा है। मैं ये विचार कर ही रहा था कि इतने में घण्टी बज गई।

थके हुए लड़के स्वामी जी को प्रणाम् करके अपने घर गये। रह गया मैं और स्वामी जी। मैंने कहा—"महाराज! आज की भिक्षा मेरे घर ही ग्रहण कीजिये न!"

हम जीमने बैठे। बातों ही बातों में धार्मिक शिक्षा की चर्चा छिड़ गई। स्वामी जी ने कहा—"देखो भाई, आजकल धर्म-जैसी वस्तु का लोप होता जा रहा है, इसलिए आरम्भ से ही धार्मिक शिक्षा द्वारा हमें नई पीढ़ी को आस्तिक बनाना होगा।"

मैंने कहा—"किन्तु स्वामी जी इन छात्रों के सुकुमार मस्तिष्क ईश्वर, आत्मा और धर्म-जैसे कठिन विषयों को ग्रहण कैसे कर सकते हैं? आज भाषण करते समय आपने अनुभव किया होगा कि उसमें उन्हें जरा भी रस न था और केवल सभ्यता के विचार से ही वे चुप बैठे हुए थे।"

स्वामी जी बोले—"भई, बात तो ठीक है। लड़कों को तो खेलना-कूदना ही अधिक प्रिय होता है। कथा-कहानी से भी उन्हें प्रेम होता है। लेकिन धर्म की चर्चा उन्हें पसन्द हो या न हों, उनके सामने करनी तो अवश्य चाहिए और कुछ धार्मिक श्लोक उन्हें कण्ठस्थ भी करा देने चाहिए।"

"किन्तु स्वामी जी! धर्म केवल जीभ पर ही नहीं रहता है। धर्म तो एक जागृति है, जिसका अन्तस्तल में जागना ही उचित है। यह भावना तभी जागती है, तब मनुष्य को इसकी भूख लगती है। इसका भी अपना समय होता है। स्वामी जी! क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि यह सब छात्रों पर असमय का बोझ लादने समान है?"

मैंने आगे कहा—"धर्म कोई गाजर-मूली नहीं, न वह बाजारू वस्तु ही है। पुस्तक में छपी हुई बातें ही धर्म नहीं हैं। क्या आप यह अनुभव नहीं करते कि ऐसी महत्व की बात को तो अधिक-से-अधिक गूढ़ और गुप्त रखना चाहिए और कठोर परिश्रम के बाद ही वह साधक को प्राप्त होनी चाहिए?"

स्वामी जी—"हाँ, इसीलिए तो हमारे पूर्वजों को गुरु के आश्रम में रहना पड़ता था और धर्म को समझने के लिए शरीर को कष्ट में डालना पड़ता था।"

मैंने—"लेकिन आज तो हम घर-घर और मदरसे-मदरसे उपदेश करके लोगों में धर्म का प्रसाद बांटने निकल पड़े हैं!"

स्वामी जी—"भई, यह कलियुग है न। आजकल गुरु के पास शिष्य-भाव से जानेवाले हैं ही कितने?"

मैंने कहा—"नहीं हैं, तो धरे रहें। धर्म को यों बेचने या भेंट करने से कोई धर्मात्मा नहीं बन सकता!"

स्वामी जी—"तो आप ही बताइये कि क्या किया जाये?"

मैंने कहा—"**मेरी समझ में तो छोटे बच्चों को धर्मोपदेश न करना ही अच्छा है। उन्हें तो इस समय स्वस्थ शरीर, तन्दुरुस्त मन, निर्मल बुद्धि और कभी न थकने वाली क्रियाशक्ति की आवश्यकता है, और आवश्यकता है उन्हें हर तरह बलवान बनाने की।**"

स्वामी जी ने कहा—"सच है, जो बलवान होंगे, उन्हीं में आत्म-बल भी रहेगा।"

मैंने कहा—"मेरा तो अटल विश्वास है कि समय आने पर मनुष्य में यौवन और बुढ़ापे की तरह धर्म-जिज्ञासा का भी स्वयं विकास हो जाता है। असमय के गृहस्थाश्रम की भाँति असमय का यह धर्म-परिचय भी मुझे असामयिक ही मालूम पड़ता है। बचपन ही से धर्म को प्रतिदिन की चर्चा का और श्लोक-पाठ का विषय बना डालने से तो उलटे उसके विषय की सच्ची जिज्ञासा ही मन्द पड़ जाती है। धार्मिक क्रियाओं का भी अपना महत्व है, पर यह आवश्यक नहीं कि उन्हें इतना महत्व दे दिया जाय कि उनके कारण मनुष्य का विकास ही रुक जाय और मनुष्य जड़वत् बन जाय।"

स्वामी जी—"आप सच कहते हैं। मेरा भी कुछ ऐसा ही विश्वास है। इतने दिनों के अनुभव के बाद मैं यह तो महसूस कर ही रहा था कि इस प्रतिदिन के पिष्टपेषण से थोड़े ही समय में विद्यार्थी ऐसे विषयों से उकता जायेंगे।"

❖

समाज की पढ़ाई

डॉ. कृष्ण कुमार

अंक 15. में सामाजिक अध्ययन की पाठ्य पुस्तकों पर कुछ सवाल उठाए गए थे। किसी भी विषय के पाठ्यक्रम निर्माण के कई पहलू होते है जिनमें से पाठ्य पुस्तक एक महत्त्वपूर्ण तत्व है। निश्चित ही पढ़ाने के तरीके, शिक्षक प्रशिक्षण, कक्षा की रचना, परीक्षा व्यवस्था, बच्चों की सामाजिक पृष्ठभूमि सभी पाठ्यक्रम निर्माण के भाग है। पाठ्य पुस्तक को बदलने के साथ-साथ इनमें भी परिवर्तन की जरूरत है परन्तु पाठ्य पुस्तक को बदले बिना ये सब नहीं बदले जा सकते।

इस लेख में डॉ. कृष्ण कुमार ने सामाजिक अध्ययन की पढ़ाई के कुछ अनुभव दिए है जिन्हें उन्होंने एक विश्लेषणात्मक नजर से पेश किया है। वर्तमान पाठ्यक्रम व पाठ्य पुस्तकों की आलोचना के साथ ही उन्होंने अच्छी पाठ्य पुस्तक की सीमा की ओर भी संकेत किए है। उनका कहना है कि केवल अच्छी पाठ्य पुस्तक से अच्छा सामाजिक अध्ययन नहीं पढ़ाया जा सकता है। सामाजिक अध्ययन की पढ़ाई किस तरह बच्चे के समाज के साथ जुड़ सकती है इसकी भी झलक हमें उनके लेख से मिलती है। उन्होंने किसी भी विषय की पढ़ाई में व्यापकता और सृजनात्मकता पर जोर दिया है।

दो साल पहले मुझे नई दिल्ली के सरदार पटेल विद्यालय की आठवीं कक्षा में सामाजिक अध्ययन की एक विशेष घंटी में बैठने का अवसर मिला था। यह संसद की घंटी थी, लेकिन वैसी संसद की नहीं जो 'तमाशा संसद' कहलाती है। तमाशा संसद में बच्चे 'असली' संसद के नेताओं जैसे दिखने की, शक्ल और पोशाक से लेकर बोलने के लहजे को हूबहू उतारने की कोशिश करते हैं। संसद का आयोजन एक नाटक की तरह किया जाता है। निश्चय ही नाटक शिक्षा का माध्यम हो सकता है, किंतु संसद का अभ्यास पूरी तरह नाटक भी नहीं बन पाता क्योंकि उसमें बच्चों की कल्पना और अभिनय क्षमता को एक सुपरिचित दायरे के भीतर रहना होता है। यह अभ्यास सचमुच तमाशा बनकर रह जाता है।

सरदार पटेल विद्यालय की संसद नाटकीय नहीं थी। वह उस तामझाम से मुक्त थी जो 'तमाशा संसद' में नाटक का भ्रम पैदा करता है। 'असली' संसद के नेताओं की नकल करने का कोई इरादा बच्चों में नहीं था। उनके अध्यापक श्री बी. डी. मेहता ने संसद प्रणाली को सामजिक अध्ययन की कक्षा के एक साप्ताहिक अभ्यास की तरह स्थापित किया था। उनका उद्देश्य संसदीय ढंग की बहस का माहौल कक्षा में उत्पन्न करना था, न कि कक्षा में संसद का भ्रम पैदा करना। सर्दी से ठिठुरते, सबसे पिछली कतार में बैठे हुए मैं बड़ी आसानी से देख पा रहा था कि कक्षा के यथार्थ को भूलने की कोई चेष्टा बच्चे नहीं कर रहे थे। सिवाय प्रासंगिक सवालों के संसद के सामयिक यथार्थ से उन्हें कोई वास्ता न था। उनमें सत्ताधारी दल, प्रतिपक्ष, अध्यक्ष, मंत्री सभी थे, पर सभी निकर और स्कर्ट में कक्षा में अपने सामान्य स्थानों पर बिखरे हुए थे। संसद की औपचारिकताओं की ओर ध्यान देने की जगह वे कक्षा की सामान्य पद्धति को जीवंत बनाने की कोशिश कर रहे थे। कमरा कक्षा लग रहा था, प्रेक्षागृह नहीं। जैसा कुछ स्कूलों द्वारा आयोजित 'तमाशा संसद' में लगता है और आयोजकों को भौंडा नहीं लगता क्योंकि वे अपने आयोजन के उद्देश्य को नाटकीय मान चुके होते हैं। पटेल विद्यालय की संसद में मुझे ऐसा नहीं लगा कि बच्चे यह भूलना चाह रहे थे कि वे बच्चे हैं। वे जानते थे कि उनके दोनों दर्शक—उनके अध्यापक श्री मेहता और अतिथि, मैं—उनका नाटक देखने नहीं आए हैं।

प्रणाली के लिहाज से आठवीं कक्षा के इन बच्चों ने संसदीय परंपरा अपने ढंग की न केवल अपनाई थी, बल्कि उसे बेहतर बनाने की कोशिश की थी। वे किसी 'मंत्री' द्वारा दी गई जानकारी को तुरंत कोष की मदद से परखने के लिए तैयार थे। प्रतिपक्ष और सत्तादल का विभाजन उनके लिए इतना महत्त्वपूर्ण नहीं था जितनी बहस के विषय की पूर्ण पड़ताल। यह सही है कि कुछेक 'मंत्री' कभी कभी तुनक उठते, पर प्रतिपक्ष पर हावी होने की कोशिश उन्होंने शायद ही कभी की। कक्षा के सबसे होशियार छात्र उस दिन प्रतिपक्ष में थे; वे न जाने कहां से तथ्यपरक जानकारी तलाश कर लाए थे और उसे प्रस्तुत करने के लिए धैर्यपूर्वक बैठे रहकर सही क्षण की प्रतीक्षा कर रहे थे। सबसे बड़ी बात यह थी कि कक्षा के अध्यापक श्री मेहता की उपस्थिति का कोई प्रभाव दिखाई नहीं दे रहा था। मेरी उपस्थिति का प्रभाव होने का सवाल ही नहीं था क्योंकि मैं एक अपरिचित अतिथि था और बच्चे उस तरह के नहीं थे जिन्हे हर वक्त अपने करतब की शान के प्रति सावधान रहने की आदत डाल दी गई हो।

बावजूद इन सब अच्छी बातो के उस संसद कक्षा की अपनी सीमाएं वास्तव में उस कक्षा की नहीं, उस सामाजिक अध्ययन की धारणा और प्रणाली की सीमाएं थीं जिसके अन्तर्गत संसद आयोजित की गई थी। इन सीमाओं की चर्चा आरंभ करने के लिए पहली बात, जो मुझे इस कक्षा से याद आती है, यह है कि उस दिन कक्षा या स्कूल से संबंधित कोई मामला किसी ने नहीं उठाया। जिन विषयों पर चर्चा हुई, उनमें तेल संकट सबसे प्रमुख था। थोड़ी बहुत चर्चा शस्त्रास्त्रों के व्यापार पर भी हुई। ये विषय इसलिए उठाए गए थे क्योंकि ये सामयिक थे।

उन दिनों इन विषयों पर रोज अखबारों में ढेर सारी सामग्री प्रकाशित हो रही थी। रेडियो और दूरदर्शन के कार्यक्रमों में भी तेल संकट सबसे महत्त्वपूर्ण विषय था। शस्त्रास्त्रों की होड़ पर कुछ दिन पूर्व एक शिखर स्तरीय बैठक की पृष्ठभूमि में अनेक पत्रकारों ने टिप्पणियां लिखी थीं। इन विषयों पर सामग्री एकत्र करना बहुत आसान था। सिर्फ़ कुछ अखबारों और रेडियो या दूरदर्शन के करीब कुछ घंटे बिताकर तेल संकट का विशेषज्ञ बना जा सकता था। सरदार पटेल विद्यालय में धनी लोगों के बच्चे पढ़ते हैं, एक बच्चे पर सौ रुपए के करीब मासिक खर्च आता है। ये बच्चे शहर के समृद्ध मध्यवर्ग के परिवारों के सदस्य होते हैं। सबके घर अखबार आता है, रेडियो है और ज्यादातर के घर दूरदर्शन भी। इन प्रसार माध्यमों पर बताई जाने वाली जानकारी हासिल कर लेना उन बच्चों के लिए चुटकी का खेल था।

इसके विपरीत यदि वे स्कूल या अपनी कक्षा के बारे में कोई बहस करना चाहते तो उन्हें अपनी सूझबूझ से विषयों की तलाश करनी पड़ती। वे एक घोर अनुशासित स्कूल के सदस्य थे। राजधानी के 'अच्छे' कहे जाने वाले 'पब्लिक' स्कूलों की परंपरा और गरिमा के अनुकूल व्यवस्था, सफाई और अनुशासन पटेल विद्यालय में था और अब भी होगा। चारों तरफ हर चीज अपनी जगह पर दिखती थी और बरामदों में पूर्ण शांति थी। कभी-कभार किसी काम से एक कमरे से दूसरे में जा रहे एक-दो बच्चे बरामदे में दिख जाते। वे विद्यालय का गणवेश पहने थे; साफ, सुन्दर और स्वस्थ दिखते थे। पेशाबघर में भी सफाई और अनुशासन था। सारे स्कूल की दीवारें सफेदी की हुई, साफ सुथरी थीं। व्यवस्था के इतने दबदबे में रहते हुए किसी विचारणीय कमी की तलाश कर सकना बच्चों के लिए क्या, किसी बाहरी बड़े के लिए भी बहुत कठिन था। कमी ही क्यों, स्कूल की व्यवस्था के किसी भी पहलू का विश्लेषण करना मुश्किल होता। हर प्रक्रिया में वहां इतनी संगति थी कि सतह के नीचे कुछ भी देख सकना नामुमकिन था। कौन-सा बच्चा कैसे परिवार से आया है, यह जान सकने की संभावना गणवेश ने कम कर दी थी। चेहरों से कोई जान सकता तो जान लेता। वह समाज जिसके बीच में स्कूल स्थित था, स्कूल के भीतर बिल्कुल अदृश्य था। सामाजिक अध्ययन के लिए निश्चय ही काफी दूभर परिस्थिति थी।

इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी कि बच्चों ने संसदीय बहस की पद्धति ही नहीं, बहस के मुद्दे भी संसद से ही लिए थे। 'तमाशा संसद' के दुर्गुणों से बच सकने के बावजूद वे समाज के अध्ययन का ऐसा कोई तरीका नहीं खोज सके थे जो उन्हें संसदीय बहस की सीमाओं से आगे ले जा

जानकारी के आदान-प्रदान के स्थान पर संसद सहज पूछना और सुनना सिखाती है। उसने एक भाषा गढ़ ली है जो देश की जमीन पर घटने वाली घटनाओं से सम्पर्क के अभाव में फरजी या मांथरी हो गई है।

इस भाषा में लोगों के लिये नही, राजनीतिक इकाइयों भर के लिये जगह है।

पाता। 'रूस ने अमरीका से कहा है' या 'मध्यप्रदेश की शिक्षा नीति इस वर्ष बदल दी जाएगी' या 'भारत को भेजा गया गेहूं खराब निकला' जैसे वाक्यांश शैलीविज्ञान के दृष्टिकोण से अमूर्त हैं जिसमें 'रूस' और 'अमरीका' का आशय इनकी सरकारों से, मध्य प्रदेश' का आशय वहां की नौकरशाही से और 'भारत' से आशय खराब गेहूं खा सकने वाले देश से है। पुराने इतिहास ग्रंथों में कहा जाता था कि अमुक देश के राजा ने अपने पड़ोसी देश के राजा को संदेश भेजा। यह बिल्कुल साफ था कि संदेश की आवाजाही में प्रजा ने कोई हिस्सा नहीं लिया। यह बात दूसरी है कि युद्ध होने पर उस जमाने में भी प्रजा या प्रजा के सैनिक लड़ते थे हालांकि लड़ाई राजाओं की होती थी। आज स्थिति यह है कि युद्ध तो 'देशों' के बीच लड़ा ही जाता है, मित्रता भी 'देशों' के बीच पनपती है, यद्यपि वास्तव में वह देशों के प्रधानमंत्रियों के बीच जन्म लेती है और कुछ पढ़े-लिखे, स्वस्थ, भोगी प्रतिनिधियों के बीच पनपती है। सत्ता की शक्ति बढ़ने के साथ देशों के भीतर और बाहर शक्ति संतुलन सूक्ष्म हुआ है। पर यह वास्तव में देशों की अन्योन्याश्रयता बढ़ने से नहीं, वरन उसकी सरकारों के बीच पारस्परिकता बढ़ने से हुआ है। देशों की अन्योन्याश्रयता बढ़ती तो अमरीका का उपभोक्ता भारत के काजू या चाय उत्पादक की परिस्थिति समझता और लातीनी अमरीका से आया मांस खाने में हिचकता क्योंकि वह अनाज के उत्पादन से छीनी गई जमीन पर पाले गए पशु का है। वास्तविकता यह है कि एक देश की जनता अब दूसरे देश की जनता के प्रति पहले से अधिक बेफिक्र है। देशों की आर्थिक विषमता और इस बेफिक्री में समानुपात है अर्थात आर्थिक विषमता जितनी अधिक होगी, एक देश की जनता में दूसरे देश की जनता की समझ उतनी ही कम होगी। लेकिन जहां आर्थिक विषमता नहीं है, जैसे यदि दो देश समान रूप से गरीब हैं, वहां भी समझ का नितांत अभाव मिल सकता है। संयुक्त राज्य अमरीका का नागरिक यदि भारत के किसान का दर्द नहीं समझता तो भारत का किसान भी श्रीलंका या ब्राजील के कृषक का दर्द नहीं समझता। अब सिर्फ सरकारें एक दूसरे को समझती हैं। जनता पहले से अधिक अपने स्थानीय और प्रांतीय दायरों में सिमट आई है। उसके पढ़े-लिखे वर्ग की जानकारी अवश्य बढ़ी है, समझ नहीं। सरदार पटेल विद्यालय के बच्चे उस सुबह जानकारी का ही संसदीय इस्तेमाल कर रहे थे।

यदि वे समझ की तलाश में होते तो तेल संकट से अधिक दिलचस्पी वे अपने स्कूल, घर और मुहल्ले में लेते। इनकी चर्चा करते हुए भौगोलिक रूप से वे सीमित हो जाते, पर मानसिक रूप से वे अधिक क्रियाशील होते। उनके पास न तो पूर्व प्रचलित शब्दावली होती, न कोई बहुत स्पष्ट धारणाएं। उन्हें संरचनाओं की खोज करनी पड़ती। इससे प्राप्त होने वाला अभ्यास उन्हें कभी शायद अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की उतनी आत्मीय और गहरी समझ तक ले

जाता जैसे वह उनके आसपास चीजों से अलग कोई दूर स्थित चीज न हो। उनकी संसद में प्रवेश करने से कुछ मिनट पहले मैंने एक वाकया देखा था जिसे मैं बहस के लिए प्रस्तुत करता, लेकिन कक्षा का माहौल देखकर रह गया। स्कूल में घुसने पर मुझे कुछ देर कार्यालय में प्रतीक्षा करनी पड़ी थी क्योंकि मैं समय से पहले पहुंच गया था। कार्यालय में बैठे हुए मैंने एक नन्हीं लड़की को आते देखा। वह अपने शिक्षक के निर्देश पर चाक लेने आई थी। नियत स्थान से चाक लेते समय उसने आवश्यकता से अधिक टुकड़े उठा लिए। वक्त शायद किसी ने नहीं देखा, जब वह दरवाजे से निकल रही थी, एक विशालकाय हाथ, जो कार्यालय में किसी काम से आए एक शिक्षक का था, एकदम से उसके सामने आया। शिक्षक ने चेहरे पर प्यार लाते हुए चुपचाप चाक के कई टुकड़े लड़की से ले लिए और दो-तीन टुकड़े छोड़कर जाने दिया।

इस घटना पर बहस का यह मुद्दा संसद में उठाया जा सकता था कि शिक्षक को उस लड़की से चाक इस तरह छीनने का क्या हक था। क्या यह आवश्यक नहीं था कि वह उससे पूछे कि उसे कितने टुकड़ों की जरूरत है? यह मान लेने का कोई अधिकार मेरी समझ में शिक्षक के पास नहीं था कि लड़की चोरी से चाक के कुछ अतिरिक्त टुकड़े 'फिजूल' खर्च करने या खेलने के लिए ले जा रही है। यदि इस घटना पर 'संसद' में बहस होती तो बच्चे अपने स्कूल की व्यवस्था, तथा बच्चों और अध्यापकों के संबंध तय करने वाली 'राजनीति' का काफी गहरा विश्लेषण कर सकते थे। सामाजिक अध्ययन की कक्षा के लिए यह बहुत उचित अभ्यास होता। लेकिन सामाजिक अध्ययन कहलाने वाले विषय की पारंपरिक अवधारणा में वह बहुत कठिनाई से स्थान प्राप्त कर पाता।

सामाजिक अध्ययन की पारंपरिक अवधारणा तीन विषयों के मिश्रण की है। ये तीन विषय है : इतिहास, भूगोल और नागरिक शास्त्र। निश्चय ही ये तीनों समाज के सम्यक अध्ययन में मदद देने वाले विषय हैं, किंतु केवल तब जब इन्हें एक दूसरे से संबंधित करके पढ़ा जाए। इनकी पारस्परिकता ही इन्हें सामाजिक विषय बनाती है। अलग अलग पढ़े जाने पर ये कोरे विषय रह जाते हैं जिनके अध्ययन का उद्देश्य अपने आप में स्पष्ट नहीं होता। लेकिन, दुर्भाग्यवश, बच्चों के लिए ऐसी किताब दुर्लभ है जो इन विषयों की पुरकता का स्थाई आभास उन्हें दे सके। ज्यादातर किताबों में भूगोल, इतिहास और नागरिक शास्त्र के लिए अलग अलग खंड होते हैं। सामग्री में किसी तालमेल की कोई गुंजाइश नहीं होती जिसका लाभ एक परिश्रमी अध्यापक उठा सके। भूगोल के खंड का राजस्थान बेरोनक मरुभूमि होता है लेकिन इतिहास के खंड में लड़ाइयों और जौहर से गरिमामंडित हो उठता है। नदियां और पहाड़ भौगोलिक ध्रुव सत्य बनकर रह जाते हैं, इतिहास कुछ वंशों के उत्थान-पतन की कहानी बन जाता है। देश का भूगोल इतिहास से जीवित और इतिहास भूगोल से प्रमाणित नहीं हो पाता।

इतिहास और भूगोल में पारस्परिकता का अभाव वास्तव में इन दो विषयों की एक अन्य कमी का परिणाम होता है। कमी यह रहती है कि भूगोल और इतिहास लोगों से नहीं जुड़ पाते। वे समाज निरपेक्ष बने रहकर एक तरह की स्वतंत्रता प्राप्त कर लेते हैं जिसके प्रभाववश इतिहास किस्सागोई और भूगोल मनोरंजक चर्चा में तब्दील हो जाता है। बच्चों के लिए यह देख पाना असंभव हो जाता है कि एक इलाके के पठारी या रेगिस्तानी होने से वहां के निवासियों के जीवन पर क्या असर पडता है। वे मानने लगते हैं कि लोगों का जीवन अपनी जगह है और उनकी जमीन का उतार-चढ़ाव, उसकी जलवायु अपनी जगह पर। न ही वे यह समझ पाते हैं कि इतिहास में उत्थान और पतन किसी वंश या राजा का नही होता, एक समाज की सभ्यता का होता है।

यह कहना गलत होगा कि ऐसी पुस्तकें बिलकुल है ही नहीं जिनमें एक इलाके की भौगोलिक परिस्थितियों का संबंध उसमें रहने वाले लोगों के जीवन से जोड़ा गया हो। आज से लगभग 35 वर्ष पूर्व भूगोल कार्यालय द्वारा छापी गई 'बाल संसार' एक ऐसी विशिष्ट पुस्तक है जो बच्चों को भूगोल का ज्ञान तट रेखा के कटी फटी होने के आधार पर अथवा पर्वत श्रृंखलाओं और पठारों के नाम न गिनवाकर उन भूखंड़ों में रहने वाले बालकों की दिनचर्या और रहन-सहन का तारतम्य वहां की भौगोलिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के साथ बैठा कर देती है। माध्यमिक स्तर की ऐसी कुछ पुस्तकें मुझे दिखी हैं हालांकि उनकी शैली बहुत नाटकीय थी और उनमें दी गई जानकारी बहुत अपर्याप्त। पर प्राथमिक स्तर पर उपलब्ध पुस्तकें इस संदर्भ में बहुत दुःखद तस्वीर पेश करती हैं। राष्ट्रीय शिक्षा शोध और प्रशिक्षण संस्थान के द्वारा प्रकाशित 'हमारा देश भारत' मुझे बिहार के एक स्कूल में चौथी कक्षा में पढ़ाने का मौका मिला। इसका दूसरा 'पाठ' उत्तर भारत के मैदान के बारे मे था। मैं जिस स्कूल में यह 'पाठ' पढ़ा रहा था, वह इसी इलाके में स्थित है। वहां लगभग प्रतिवर्ष बाढ़ आती है और भारी नुकसान करके चली जाती है। बाढ़ वहाँ की भौगोलिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों को समझने का माध्यम हो सकती हैं। पर 'हमारा देश भारत' के दूसरे अध्याय में उत्तर भारत की नदियों और बाढ़ के बारे में सिर्फ इतना लिखा था : 'ये नदियां लाखों सालों से अपने साथ मिट्टी बहाकर लाती रही हैं और आज भी ला रही हैं। कभी वर्षा के दिनों में इन नदियों का पानी दोनों ओर दूर दूर तक फैल जाता है। इसे बाढ़ कहते हैं।' नदियों और बाढ़ का यह विवरण यदि सामाजिक अध्ययन की किसी शाखा में आ सके तो उसे असामाजिक अध्ययन ही कहा जा सकेगा। नदियों का किसी समाज के लिए सिर्फ इतना अर्थ दुनिया के बिलकुल निर्जन इलाके में ही हो सकता है कि वे मिट्टी बहाकर ले जाने का साधन हैं। उत्तर भारत की नदियां जिन इलाकों से गुजरती हैं, वे निर्जन नहीं, भारत में जनसंख्या के सर्वाधिक घनत्व वाले क्षेत्रों में से हैं। वहां बसे लोगों का जीवन, उनकी संस्कृति के प्रत्येक हिस्से पर नदियों की छाप है। सामाजिक अध्ययन का अर्थ इस छाप का अध्ययन होना चाहिए, न कि बहती हुई मिट्टी का बाढ़ ने उत्तर भारत के जनमत को प्रभावित किया है, उसकी संपूर्ण विचार

प्रक्रिया में एक निश्चित भूमिका निभाई है। सामाजिक अध्ययन का उद्देश्य बाढ़ और जनजीवन के पारस्परिक संबंध की समझ होना चाहिए। बाढ़ के भूगोल की इसी संदर्भ में कोई उपयोगिता चौथी कक्षा के बच्चे के लिए हो सकती है। मिट्टी बहाकर लाने में व्यस्त नदियों और किनारों पर फैल जाने वाली बाढ़ का अर्थ और महत्त्व वह निर्विकार भाव से याद ही कर सकता है जिससे परीक्षा में कुछ लिख सके। इस विशुद्ध भौगोलिक ज्ञान के प्रति कोई संवेदित जिज्ञासा दिखा सकना उसके लिए असंभव होगा। कई वर्षों तक इस ढंग से भूगोल पढ़ चुकने के बाद जब वह अनुशासित हो चुकेगा, तब शायद किताबी भूगोल उसके लिए दिलचस्पी, बहस और शोध की चीज बन जाए जैसा हर विषय उसके सुविधाभोगी विशेषज्ञ के लिए बन जाता है; दस वर्ष की आयु में ऐसा होना असंभव है। यही उसके बचपन की सबसे बड़ी देन है। पर एक शोध संस्थान के वातानुकूलित कमरे में बैठकर बच्चों की किताबें रचने वाले इस देन को प्रायः नहीं जानते। तीस-चालीस वर्ष पहले इलाहाबाद के भूगोल कार्यालय के संस्थापक श्री रामनारायण लाल अवश्य बच्चों की इस समग्रताग्राही प्रकृति से परिचित रहे होंगे। विभिन्न देशों पर उनकी पुस्तक माला आज भी बच्चों के लिए भूगोल-लेखन की एक मिसाल है जिसे बेचते हुए वे कुछ वर्ष पूर्व तक बहुत वृद्धावस्था में एक झोले के साथ स्कूलों में दिख जाते थे।

'ज्ञान और बुद्धि' शीर्षक लेख में बर्ट्रेंड रसेल ने बुद्धि को परिभाषित करने वाली विशेषताओं में व्यापकता को सबसे पहले जगह दी है। रसेल के अनुसार ज्ञान के विस्तार के साथ-साथ बुद्धि की सामर्थ्य घटी है। अणु की शक्ति का अध्ययन करने वाला वैज्ञानिक राजनीति को नहीं समझता। रसेल की चिंता ज्ञान की शाखाओं के रूढ़ होने से उत्पन्न हुई है। विशेषीकरण की स्पर्धा में अध्येता के मानसिक सीमांत संकरे होते चले जाते हैं और उसे नियंत्रण में रखना उतना ही आसान होता जाता है। ऐसे वैज्ञानिक बिरले हैं जो अणुशोध के राजनीतिक प्रयोजन से अवगत हैं। हाल में संयुक्त राज्य अमरीका के अनेक अणुवैज्ञानिकों ने अपने पदों से इस्तीफा दिया। अणुशोध के खतरों से अवगत होने के बाद उन्होंने जाना कि खतरे फायदों से कहीं ज्यादा थे। उनमें से एक, डेल ब्राइडेनबा ने कहा: 'इंसान के लिए जोखिम और अनिश्चितता तथा प्रजनन संबंधी अज्ञात परिणामों को देखते हुए मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि अणुशक्ति होनी ही नहीं चाहिए।' अणु शक्ति उन अनेक क्षेत्रों में से एक है जिनके अन्वेषण में दुनिया भर के वैज्ञानिक अपने प्रयासों के राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक परिणामों के प्रति सचेत हुए बगैर लगे हैं। उनकी योग्यता उनका अपने कार्यक्षेत्र पर अधिकार संदेह के परे हो, पर उनके ज्ञान में उस व्यापकता का अभाव है जिसकी चर्चा रसेल ने अपने निबंध में की है। वे विज्ञान के पंडित भले हों; उनका सामाजिक अध्ययन शायद कुछ कमजोर है।

सामाजिक अध्ययन की विडम्बना वास्तव में शिक्षा के प्राथमिक या माध्यमिक स्तर तक सीमित न हो। विषयों का विभाजन हमारी सदी में अध्ययन की आवश्यक शर्त बन गया है। किसी की शिक्षा जितनी "ऊँची" होती जायगी, उसका दायरा उतना ही सीमित होता जायगा।

सामाजिक अध्ययन का तीसरा विषय नागरिक शास्त्र विशुद्धः राजनीतिक विषय है। नागरिक शास्त्र बच्चों को उनकी सामाजिक इयत्ता का भान करवा सकता है, पर वह उन्हें केवल शासन की मशीनरी से परिचित करा पाता है। संविधान से लेकर जिले की प्रशासन पद्धति तक का विवरण सामाजिक अध्ययन की पुस्तकों के नागरिक शास्त्र के खंड में दिया रहता है। बच्चे इस विवरण को कक्षा में बार-बार पढ़कर समाज की एक ऐसी धारणा बना लेते हैं जिसकी कल्पना भी एक वयस्क पाठक या अध्यापक के लिए असंभव होगी। उनकी धारणा के समाज में एकमात्र प्रशासन ही वैध धंधा होता हैं। जिलाधीश से लेकर पटवारी तक फैली हुई प्रशासन की सीढ़ी उनके लिए समाज का स्थानापन्न बन जाती है। नागरिक शास्त्र की चालू सामग्री में समाज दो तरह के लोगों में बंटा होता है: प्रशासक और प्रशासित। पहले वर्ग में वे सब लोग आते हैं जो किसी न किसी प्रकार शासनतंत्र से संबंधित हैं। अनेक पुस्तकें बखूबी इस वर्ग के सदस्यों में उन तमाम धंधों में लगे लोगों को शामिल कर लेती हैं जो सरकारी नौकरियों के अन्तर्गत आते हैं; जैसे सफाई कर्मचारी, डाकिया और अध्यापक। बच्चे को यह महसूस कराने की कोशिश इन पुस्तकों में की जाती है कि ये लोग कर्मचारी हैं, समाज के सदस्य नहीं क्योंकि इनके धंधे सरकार द्वारा पैदा किए गए हैं। दूसरा वर्ग जो प्रशासितों का है, सामाजिक अध्ययन की पुस्तकों में दी गई सरकार संबंधी जानकारी के घटाटोप में लुप्त हो जाता है। दुकानदार, खिलाड़ी, घड़ीसाज, बुनकर, जुलाहा, मजदूर, कारीगर समेत सारा अशासक समाज नागरिक शास्त्र के खंड में स्थान नहीं पाता। वह उस इकाई में गड्डमड्ड ठुंसकर एकाध वाक्य में निपट जाता है जिसके कल्याण और सुख की खातिर सरकारी कर्मचारी काम करते हैं, अधिकारी हुक्म देते हैं, बांध बनते हैं, बिजली गाँव-गाँव पहुंचती है।

'सामाजिक अध्ययन' इस तरह समाज की बहुत अधूरी तस्वीर देकर बच्चे को उस माहौल में जीने के लिए तैयार करता है जिसमें प्रसार के सभी साधन प्रचार का काम करते हैं। मैं समझता हूं कि वह शिक्षा जो शिक्षित को प्रचार सामग्री का उपभोक्ता ही बना पाती है, साक्षरता से अलग नहीं की जा सकती। इस दृष्टिकोण से भारत में बच्चों की प्राथमिक शिक्षा को एक साक्षरता कार्यक्रम ही कहना चाहिए। आरम्भिक स्तर पर, जब बच्चे के संस्कार बन रहे होते हैं, स्कूलों में पढ़ाई जाने वाली सामग्री न तो अध्यापक की सूझ या जानकारी से उपजती है, न बच्चों की चयन क्षमता से। वह सीधे शिक्षा विभाग के अधिकारियों का उत्पादन है। इनमें से अनेक कभी शिक्षक रह चुके लोग अवश्य होते हैं, पर समस्या यह नहीं है कि बच्चों की पुस्तकें शिक्षक ने लिखी हैं या गैर शिक्षक ने। यह एक महत्त्वपूर्ण सवाल भर हो सकता है। असल

समस्या यह है कि प्राथमिक स्तर की सामग्री रूढ़ है या परिवर्तनशील। यह कसौटी प्रचार सामग्री को सर्जनात्मक सामग्री से अलग कर सकती है। वह तमाम पाठ्यसामग्री जो रूढ़ हो चुकती है, अर्थात एक बार तैयार तथा तय हो जाने पर लंबे समय तक ज्यों की त्यों प्रयोग में आती रहती है, सर्जनात्मक हो ही नहीं सकती। वह अध्यापक की क्षमताओं को निरंतर बढ़ाते रहने की जगह एक सांचे में ढाल देती है। सामग्री अपने आप में कितनी ही दिलचस्प हो, और अध्यापक कितना ही परिश्रमी, किंतु एक तय दायरे में काम करते हुए वह बच्चों के कक्षानुभव को सर्जनात्मक नहीं बना सकता। ऐसा अनुभव जो सर्जनात्मक नहीं बन पाता, प्रचार का काम करता है। यह जरूरी नहीं कि प्रचार एक शासन पद्धति का हो; प्रचार कुछ निश्चित कविताओं का हो सकता है, कुछ तस्वीरों का या महज इस संस्कार का कि शिक्षा पहले से चली आ रही पाठ्य पुस्तकों को अध्यापक से पढ़ लेने का नाम है। भविष्य में जब कभी सामाजिक अध्ययन की बेहतर पुस्तकें पर्याप्त संख्या में लिखी जाएंगी, इस विषय का स्वरूप अवश्य कुछ कारगर बनेगा। लेकिन सिर्फ पुस्तकें एक हद तक ही सामाजिक अध्ययन का साधन बन पाएंगी। सामाजिक अध्ययन का सबसे मुफीद साधन समाज है। समाज का स्कूल से अभी कोई रिश्ता नहीं। स्कूल में समाज की जो थोड़ी बहुत बानगी आ पाती है, वह पुस्तकों के ही जरिए आ पाती है। यानी पहले समाज को काले अक्षरों की शक्ल में तब्दील होना पड़ता है, फिर काले अक्षर बच्चे के दिमाग में समाज की तस्वीर बनाएंगे, ऐसी उम्मीद की जाती है। यह क्रिया इतनी आसान तथा मशीनी नहीं है कि दूरदर्शन की तरह पहले तस्वीर को ध्वनि तरंगों में, और फिर ध्वनि को तस्वीर में तब्दील कर दे और तस्वीर ज्यों की त्यों बन जाए। किताबों के जरिए बच्चे के दिमाग में जाते जाते सामाज स्वयं किताबी बन जाता है। बच्चे की तीव्र बिंबग्राहक क्षमता के बावजूद शब्दों का यथार्थ से संबंध अक्षुण्ण नहीं रह पाता। समाज एक गतिशील वास्तविकता के रूप में उस तक नहीं पहुंच पाता। ऐसा तभी संभव है जब समाज का स्कूल और बच्चों से सीधा संबंध कायम हो। स्कूल के बाहर और अंदर का अंदर यदि इतना अधिक न हो जितना अभी है तो बच्चों और समाज का संबंध स्थापित हो सकता है। अभी अध्यापक के सिवा अन्य कोई वयस्क स्कूल में नहीं जाता। यदि समाज के तमाम धंधों में लगे हुए लोग प्राथमिक स्कूल के लिए कुछ समय देने लगें तो बच्चों का व्यावहारिक और दिमागी दायरा बढ़ेगा। बड़े चाहें तो इसे बच्चों के प्रति अपनी जवाबदेही मान सकते हैं। उन्हें बच्चों को अपने धंधे की उपयोगिता और विशेषताओं से परिचित कराना होगा। जुलाहे और जज दोनों के लिए यह काम समान रूप से कठिन किंतु दिलचस्प होगा। स्कूल में गैर अध्यापक वयस्कों के आने से बच्चों की अध्यापकों पर निर्भरता कम होगी और अध्यापकों पर रहने वाला काम का बोझ घटेगा। किंतु सबसे बड़ी बात यह होगी कि बच्चे समाज को अधिक करीब से समझ सकेंगे।

लेखक की पुस्तक "राज, समाज और शिक्षा" से साभार। यह पुस्तक डॉ. कृष्ण कुमार बी–4/226 सफदरगंज एनक्लेव नई दिल्ली से प्राप्त की जा सकती है।

(मूल्य 12 रु. 4 रु. डाक खर्च)

सामाजिक अध्ययन की पढ़ाई

—डॉ. रामनारायण स्याग

मैं अनुवर्तन करने एक शाला में पहुँचा। विज्ञान काल खंड शुरू होने में अभी 15 मिनट की देरी थी। मैंने पता लगाया कि कक्षा 6 में कौन पढ़ा रहे हैं? पता चला कि इस कालखंड में कक्षा में कोई भी शिक्षक नहीं है। मैं कक्षा में चला गया। सभी बच्चे मुझे पहचानते थे। बच्चों से पूछने पर मालूम पड़ा कि यह सामाजिक अध्ययन का कालखंड है। मैंने सोचा क्यों न सामाजिक अध्ययन पर बच्चों से चर्चा की जावे। मैंने पूछा आप सामाजिक अध्ययन कैसे पढ़ते हैं? सारे बच्चे एकदम जोर से हँस पड़े। वे कभी मेरी तरफ देखते और कभी आपस में एक दूसरे की तरफ। बच्चों की ऐसी हँसी से मैं सोचने लगा कहीं प्रश्न तो बेढंगा नहीं पूछ लिया, मैंने पूछा तुम विज्ञान कैसे पढ़ते हो? तुरन्त उत्तर दिया, प्रयोग करके, परिभ्रमण करके, आपस में बहस एवं चर्चा करके। तब मैंने कहा–हाँ, इसी प्रकार बताओ तुम सामाजिक अध्ययन कैसे पढ़ते हो? बच्चे फिर हँसे और बोले अरे, सामाजिक अध्ययन पढ़ने की भी कोई विधि होती है। छात्रों ने बताया कि सर एक छात्र को पुस्तक से पढ़ने के लिए कह देते हैं, एक छात्र पढ़ता है बाकी सुनते हैं। थोड़ी देर बाद दूसरे छात्र को पढ़ने के लिये कह देते हैं। बस ऐसे पढ़ते रहते पाठ पूरा होने पर पुस्तक में दिये प्रश्नों के उत्तर सर लिखवा देते हैं। फ़िर मैंने पूछा आपने अब तक कौन-कौन से अध्याय पढ़ लिए। उन्होंने पढ़े हुए अध्यायों के नाम बताये। पढ़ाये हुये अध्यायों में से एक अध्याय "स्थानीय शासन" था। मैंने पुस्तक खोली, उस अध्याय को देखा एवं बच्चों से पूछा पंचायत के क्या-क्या कार्य हैं? बच्चों ने बताया गाँव की सफ़ाई करना, नालियां गलियां बनवाना। फिर मैंने पूछा कि आपके गाँव में नालियों एवं गलियों की कैसी स्थिति है? तभी बच्चे जोर-जोर से बोलने लगे–बहुत कीचड़ है, गंदे पानी निकलने की कोई व्यवस्था नहीं है। गलियों में कचरा पड़ा रहता है। मैंने पूछा इसे कौन साफ करवायेगा। इस पर सभी बच्चे चुप थे। मैंने उन्हें ध्यान दिलाया कि अभी तो तुम लोग कह रहे थे कि सफ़ाई आदि कार्य करवाना पंचायत का काम है तो तुम्हारे गांव में पंचायत क्या काम करती है? बच्चे सोचने लगे। मैंने उनसे कहा जैसे तुम विज्ञान प्रयोग, परिभ्रमण, चर्चा आदि से सीखते हो। क्या सामाजिक अध्ययन भी पूरी तरह पुस्तक से न पढ़कर अन्य विधि से पढ़ सकते हो। बच्चे बड़े हैरान थे। चर्चा से मुझे अहसास हुआ कि उन्हें यकीन ही नहीं हो रहा था कि सामाजिक अध्ययन की कक्षा में चर्चा भी हो सकती है, गाँव के लोगों से पूछ-ताछ करके भी सीखा जा सकता है। वे तो पढ़ाई का अर्थ, केवल पुस्तक पढ़ने एवं प्रश्न के उत्तर रटना ही समझते हैं। ○

जब कपास ने इतिहास बुना

—प्रो. पी. महेश्वरी
अनु. रमेशदत्त शर्मा

मोहनजोदड़ो (अब पश्चिमी पाकिस्तान में) की खुदाई में जो सबसे अधिक रोचक वस्तुएँ मिली हैं, उनमें कुछ चांदी के टुकड़े भी हैं, जो धागे में लिपटे हुए पाये गये हैं। ये धागे कपास के हैं। खुदाई में अनेक मूर्तियाँ मिलीं जिनमें एक पुरुष का धड़ बहुत महत्व-पूर्ण है जो एक कपड़ा ओढ़े हुये है और उस पर चिड़ी के पत्ते की आकृति की छपाई है जिसमें हमें मालूम पड़ता है कि उस समय बुनाई एवं छपाई काफ़ी उन्नत अवस्था में थी।

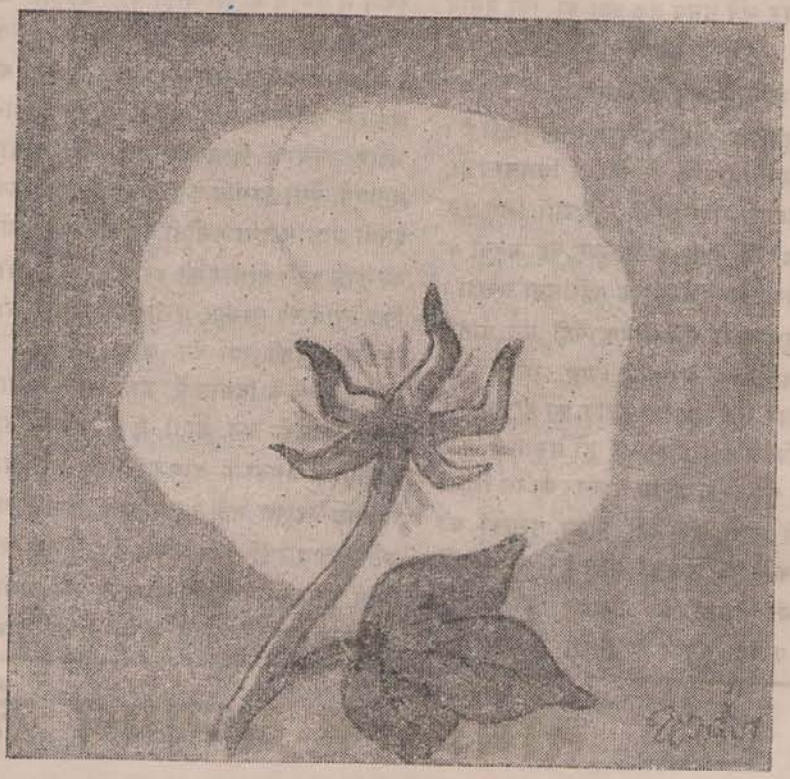

फलों में बैठे मेमने

यूनानी इतिहासकार और यायावर डेरो-डोटस ने 445 ई.पू. में लिखा था—"भारत में ऐसे पेड़ हैं, जिनके फलों की ऊन सुन्दरता और गुण में भेड़ की ऊन से बढ़कर है। कुछ पाश्चात्य लेखकों ने फल के भीतर बैठे एक मेमने के किस्से गढ़े। सिकन्दर महान और उसके तत्काल बाद के उत्तराधिकारी के साथ आए खोजियों के माध्यम से यूनानियों तक कपास का ज्ञान पहुँचा। तब से कपास की खेती, विभिन्न प्रकार के वस्त्र निर्माण में उसका उपयोग, रँगाई और बुनाई की कला दिनोंदिन इतनी विकसित हो गई कि मध्ययुग तक भारत के सूती कपड़ों की धाक दूर-दूर तक जम गई और पड़ौसी देशों से ही नहीं बल्कि वेनिस होते हुए सुदूरवर्ती राज्यों से भी ढाल्ले का व्यापार चल निकला। मार्कोपोलो ने कोरोमंडल तट के बारे में लिखा था कि वहाँ दुनिया का सबसे महीन और खूबसूरत सूत बनता था। ढाका की मशहूर मलमल की कोमलता, बारीकी और खूबसूरती तो बस कहानी बनकर ही रह गयी है। जब इस मलमल को सूखने के लिये घास पर बिछा दिया जाता था तो ओस पड़ने के बाद इस तरह चिपक जाती थी कि नजर ही नहीं आती थी। कहा जाता है कि पूरी की पूरी साड़ी एक अँगूठी में से निकल जाती थी। उस मुगल शहजादी की कहानी अकसर दुहराई जाती है, जिसने सात तल करके मलमल पहनी थी, फिर भी उसका अंग-अंग इतना साफ नजर आ रहा था, कि उसे अपने पिता की झिड़कियाँ सुननी पड़ी।

कपास, अंग्रेज और गांधी :

दुर्भाग्यवश भारतीय वस्त्र-उद्योग के इस स्वर्ण युग के पश्चात् अंग्रेजों के भारत आगमन के साथ ही अवनति का युग आया और ईस्ट इंडिया कंपनी तथा ब्रिटिश सरकार ने इसकी उपेक्षा की।

अंग्रेजों ने चाल भी बड़ी टेढ़ी चली कि यहां से कपास खरीदा और फिर उसी का कपड़ा बनाकर हमें बेचा। फलस्वरूप लंकाशायर तो फूलता गया और भारतीय किसानों की हालत दिनोंदिन पतली होती गई। गांधीजी ने इधर ध्यान दिया और हाथ करघा लेकर मैदान में उतर पड़े, जिससे एकबारगी सारा संसार चौंक पड़ा। असहयोग आन्दोलन और विलायती कपड़ों के बहिष्कार का आन्दोलन धीरे-धीरे जड़ पकड़ता गया और अंग्रेजों की कमाई खटाई में पड़ गई।

नई दुनिया में कपास :

परन्तु अकेला भारत ही नहीं था, जिसने अतीत में कपास की खेती की थी, बल्कि नई-दुनिया में भी, पेरू के प्राचीन मकबरों में सूत के कपड़े पाए गए है। स्पेनवासी अन्वेषकों ने वेस्टइंडीज से लेकर मैक्सिको, ब्राजील और पेरू से कपास का पता लगाया है और इनमें कुछ भी हो यह निर्विवाद है कि भारतीय कपास ही दुनिया का पहला कपास था।

संयुक्त राज्य अमरीका के दक्षिण-पूर्वी भाग में कपास का प्रवेश काफी देर से हुआ। 1621 में आजमाइश के लिए कुछ बीज बोए गए थे और उस सदी के अंतिम दिनों में छोटे पैमाने पर कुछ मोटा-झोटा कपड़ा भी बनाया गया। अगले सौ सालों से वहां के दक्षिणी राज्यों में दलित वर्गों का तन ढाँकने के लिए यही कपड़ा काम आता रहा। 1747 में जाकर अमरीका इस लायक हुआ कि इंग्लैंड को कपड़ा भेज सका। 1749 में विटनी ने बिनौला निकालने की मशीन का आविष्कार किया, जिसने कपास-उद्योग को बड़ा बल दिया। तभी से कपास की खेती अमरीका की एक महत्वपूर्ण फसल हो गई।

हब्शियों की समस्या और कपास :

संयुक्त राज्य अमरीका में कपास की खेती का यह विस्तार ही था, जिसने हब्शी-समस्या को जन्म दिया। जिन क्षेत्रों में कपास की खेती होती है, वहाँ गर्मी में तापमान काफी ऊँचा रहता है, इसके अलावा ज्यादा मुनाफा कमाने के लिये भी यह जरूरी होता है कि मजदूर सस्ते से सस्ते मिलें। अमरीकी इंडियन एक तरह से बड़ी स्वतंत्र प्रकृति के लोग थे और उन्होंने अपने श्वेत शासकों के साथ सहयोग करने से इंकार कर किया। लंकाशायर (इंग्लैंड) की मिलों के लिये अधिकांश कपास अमरीका के दक्षिणी राज्यों से ही जाता था, इसलिए ब्रिटेन के जहाजों के लिए यह व्यापार बड़ा नफे वाला साबित हुआ, कि वे अफ्रीका के पश्चिमी तट से गुलामों को पकड़-पकड़ कर कपास के खेतों पर काम करने के लिए उन्हें अमरीका में बेच दें। एक बार में ज्यादा से ज्यादा हब्शियों को भरकर ले जाया जा सके, इसके लिये जहाजों के ड़ेकों के बीच में खास तौर से गैलरियां बनाई गई थीं। इनमें असंतुष्ट हब्शियों को जंजीर से बांधकर नीचे लिटा दिया जाता था जिससे कि वे समुद्र में कूद कर भाग न सकें। प्रत्येक गुलाम के लिए नियत स्थान साढ़े पांच फुट लम्बा और सोलह इंच चौड़ा था। बाद में उन्होंने हब्शी औरतें भी पकड़नी शुरू की और वर्जीनिया के राज्य ने हब्शियों की नस्ल बढ़ाने का काम शुरू किया, क्योंकि उन्हें समुद्र पार से लाने की अपेक्षा यह तरीका सस्ता था। अठारहवीं सदी के अन्त और उन्नीसवीं के प्रारम्भ काल तक, अफ्रीकी तटों से हर साल अमरीका के लिए ले जाए जाने वाले गुलामों की संख्या 100000 तक पहुँच गई थी। जहाज में लदे इस सजीव माल को उतारकर, इंग्लैंड के लिए लौटते वक्त व्यापारी लोग जहाजों से तम्बाकू, चीनी, शराब और शीरा भर लिया करते थे।

लिंकन और दास प्रथा का अंत :

1830 के आसपास उत्तरी और दक्षिणी संयुक्त राज्य अमरीका में दास-व्यापार और दास-प्रथा की वैधता को लेकर मतभेद पैदा हो गया। दास-प्रथा के अतिरिक्त उनके अपने-अपने आर्थिक स्वार्थ भी थे। 1860 में अब्राहम लिंकन (1802–1865) अमरीका के प्रेसीडेंट बनें। वह दास-प्रथा के विरुद्ध थे, अतः उनका प्रेसीडेंट चुना जाना, एक तरह से दक्षिण वालों के लिये यह संकेत था, कि वे उत्तर से अपना नाता तोड़ लें। उसने समझौता कराने की भरसक कोशिश की, किन्तु असफलता ही हाथ लगी। दक्षिण के 11 राज्यों ने उत्तर से संबंध-विच्छेद कर लिया। लिंकन ने यह स्वीकार नहीं किया कि किसी भी राज्य को संघ से अलग होने का हक है। और तब 1861 में वहां गृहयुद्ध छिड़ गया। शुरू-शुरू में हर जगह दक्षिण वाले जीते, लेकिन उत्तर के पास अपेक्षाकृत अधिक साधन थे, अतः दक्षिण को हार माननी पड़ी। कानून की ओर से हब्शियों को मुक्त कर दिया गया और हालांकि कभी-कभी अब भी छुटपुट घटनाएं हो जाती हैं, परन्तु सामान्यतया वहां हब्शियों की स्थिति संतोषजनक है और हमारे देश के अछूतों से बुरी नहीं है।

इस प्रकार कपास ने इतिहास में खूब गुल खिलाए; गो कि आज नाइलोन, टेरिलिन आदि कृत्रिम रेशों का राज है, फिर भी सूत, सूत ही है।

फैसले पर फैसला

—डॉ. मंजू गुप्ता

आज फिर सत्यकाम को नौकरी से निकाल दिया है। उसके खिलाफ़ शिकायत आई है कि वह हर बात का विरोध करता है। उसकी पटरी ठेकेदारों से नहीं बैठती। केवल उसके कारण बहुत सारे कार्य ठप्प पड़े हुए हैं। जो फण्ड उनके विभाग को मिला था, उसका भी समुचित उपयोग नहीं हो पा रहा है, जिससे देश की प्रगति में बाधा उत्पन्न हुई है।

यह तीसरा अवसर है, जब सत्यकाम को उसके पद से हटाया गया है। हर बार वह इस दंड को अपनी नियति मानकर जहर के घूट पीकर रह जाया करता था, पर इस बार ऐसा नहीं हुआ। सत्यकाम ने इस दंड के विरुद्ध न्यायालय में चुनौती दी है और सबसे अधिक आश्चर्यजनक बात यह है कि उसने यह मुकदमा विश्वविद्यालय पर किया। उसका दावा है कि विश्वविद्यालय ने उसे तकनीकी ज्ञान तो दिया, परन्तु उस ज्ञान को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में किस प्रकार उपयोग में लाए इस ज्ञान से वंचित रखा; परिणाम स्वरूप उसे नौकरी से निकाला गया है, अतः उसे क्षतिपूर्ति दिलवाई जाए।

कानूनविदों की चर्चा इस विषय पर हुई। वकीलों के कई दिनों के बहस-मुबाहसे के पश्चात् जज की तरफ से यह घोषणा निर्णय के रूप में हुई है कि "सत्यकाम इतनी शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् भी निकम्मा और नाकारा युवक साबित हुआ है। वह आधुनिक सामाजिक मूल्यों को आत्मसात नहीं कर पाया, इसके लिए वह स्वयं दोषी है, दी गई शिक्षा नहीं।

(लघु आघात से आभार)

प्रदूषण के शिकंजे में

पर्यावरण के साथ बिना सोचे समझे खिलवाड़ करने के नतीजे अब बहुत तेजी से सामने आ रहे हैं, जैसे बाढ़, भूस्खलन, अति वर्षा या सूखा, तरह तरह की बीमारियाँ आदि पिछले सालों में बहुत बढ़ गई हैं। इन खतरों को देखते हुए पर्यावरण के प्रति आज चेतना की एक लहर तो आई है। परन्तु खतरों को देखते हुए यह जरुरी हो जाता है कि पर्यावरण मुद्दों को गहराई से समझा जाए और बड़े पैमाने पर जानकारी फैलाकर पर्यावरण के प्रति चेतना विकसित की जाए। सरकार ने पर्यावरण को बचाने की जो नीतियाँ और नियम बनाए हैं, उनका सख्ती से पालन हो। पर्यावरण विनाश के मामलों पर जनता में इतनी जागरुकता आए कि वे उसे स्थानीय स्तर पर रोक सकें।

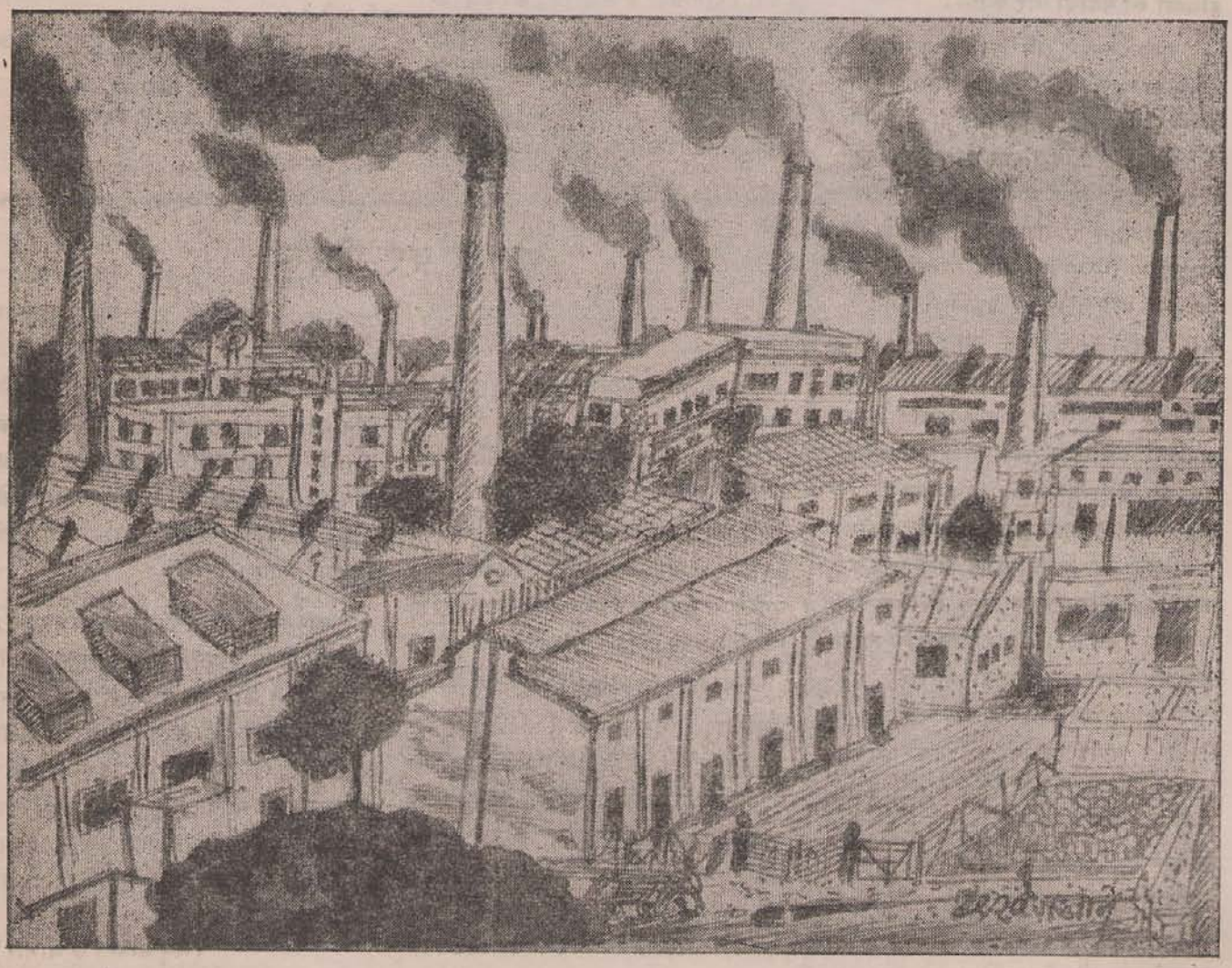

वातावरण :

वातावरण के संबंध में लिखते हुए एक लेखक ने विस्तार से वर्णन करते हुए धरती को एक जीवंत कोशा कहा है और उसके चारों ओर के वातावरण को उसकी रक्षा का एक परदा बताया है। वातावरण धरती की सतह के ऊपर हवा को रोके रखने में मदद करता है। हवा प्रकृति की एक अमूल्य भेंट है। उसके बिना जीवन कुछ क्षणों से ज्यादा टिक नहीं सकता। लेकिन उस हवा को शुद्ध बनाये रखने और हमारे रहन-सहन से वातावरण को क्षति न पहुँचाने का होश हाल ही में पैदा हुआ है।

उद्योगों, दौड़ती मोटरों और हजारों-हजार घरों में जलने वाले ईंधन से वातावरण में बहुत बड़े पैमाने पर घातक प्रदूषण तत्व जमा होते हैं। उनसे क्षेत्रीय तथा प्राकृतिक पर्यावरण में कई तरह की समस्याएँ पैदा होती है। दरअसल धरती का वातावरण नाशवान है और खुद को शुद्ध कर लेने की उसकी शक्ति हम ठीक से समझ नहीं पाये हैं, पर है वह सीमित ही।....

दुनिया के वातावरण में कार्बन डाई-आक्साइड के अंश इस कदर भरते जा रहे हैं कि उनके कारण आगामी सालों में मौसम में भयंकर परिवर्तन हो जायेंगे। स्थानीय स्तर पर हवा-प्रदूषण के हानिकारक प्रभावों में जहरीली गैस और धुंआँ, धुंधलापन, लोगों के स्वास्थ्य पर बुरा असर, फसलों और साग-सब्जियों की बीमारी आदि सब शामिल है। धूल के कणों और क्षयकारी गैसों के कारण इमारतें आदि भी खराब हो जाती है।

हवा का प्रदूषण अब केवल पश्चिम के बड़े-बड़े औद्योगिक शहरों तक ही सीमित नहीं रहा है। हमारे देश में भी बड़े शहरों को लपेटते हुए अब वह छोटे-छोटे कस्बों और सोये हुए शांति गांवों के निवासियों को भी नुकसान पहुँचाने लगा है : जगह-जगह ताप बिजलीघर और बड़े उद्योग लगने लगे हैं।

वायु-प्रदूषण :

बंबई के चेंबूर मोहल्ले के एक घर में हाथ से लिखी एक तख्ती टँगी है। उस पर लिखा है : "वायु-प्रदूषण बच्चों तथा सभी जीवों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।" लेकिन यह उस इलाके की इस भयंकर मुसीबत का कम-से-कम वर्णन है, जिसका सामना वहां के लोगों को रोज ही करना पड़ता है। चेंबूर देश भर में सबसे ज्यादा रासायनिक कारखानों वाला क्षेत्र है इसलिए वहां के लोग आमतौर पर कहते हैं कि "चेंबूर तो गैस-चेंबर है।" म.प्र. का नागदा शहर भी गैस-चेंबर बन गया है। वह दिन दूर नहीं जब देश के और भी कई शहर जल्दी ही गैस-चैंबर बन जायें।

भारत में राष्ट्रीय स्तर पर वायु-प्रदूषण की ओर लोगों का ध्यान पहली बार 1972 में उस समय गया था जब सरकार ने ताजमहल से 40 कि. मी. दूर मथुरा में तेलशोधक कारखाना स्थापित करने की घोषणा की। ताजमहल के लिए संभावित खतरे के बारे में तरह-तरह के अध्ययन किये गये है। उत्तर भारत में वायु-प्रदूषण का यह सबसे ज्यादा चर्चित मामला है। [बाक्स देखें] पर देश के दूसरे स्थानों के प्रदूषण की मात्रा और परिणामों के बारे में लोगों को अभी बहुत कम जानकारी है। छोटे कस्बों और गांवों में लोगों पर और खेती पर उसका असर होने लगा है। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में वायु-प्रदूषण पर आयोजित एक राष्ट्रीय सम्मेलन में प्रो. डी.एन. राव ने बताया था कि उद्योगों से फैलनेवाले द्रव्यों के कारण कृषि की पैदावार में 17 से 30 प्रतिशत तक की कमी हो सकती है।

प्रमुख प्रदूषक :

वायु-प्रदूषण क्या बला है ? "वायु-प्रदूषण एक ऐसी स्थिति है जिसमें बाह्य वातावरण में मनुष्य और उसके पर्यावरण को हानि पहुँचाने वाले तत्व सघन रूप से एकत्रित हो जाते हैं।" भारत के संदर्भ में यह परिभाषा अपर्याप्त है। यहाँ तो घर के भीतरी वातावरण में लकड़ी, गोबर, खेत के कचरे आदि गैर-व्यापारिक चीजों के जलाने से लोगों के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है।

खनिज ईंधन के जलने से ये द्रव्य मुख्य रूप से निकलते हैं : कार्बन डाईऑक्साइड, कार्बन मोनोक्साइड, सल्फर डाईऑक्साइड, नाइट्रोजन के ऑक्साइड्स, सस्पेंडेड पर्टिक्यूलेट मैटर, हाइड्रोकार्बन और धातु तत्व (मेटलिक ट्रेसेज)। कुछ खास चीजों से दूसरे प्रकार के प्रदूषक तत्व निकलते है, जैसे—रासायनिक खाद कारखाने से यूरिया की धूल, पेट्रोल के जलने से सीसा (लेड), अल्यूमिनियम उत्पादनों से फ्लोराइड, अणुऊर्जा संयंत्रों से रेडियोधर्मिता आदि। कुछ मुख्य प्रदूषकों के सामान्य स्रोतों और उनके पर्यावरणीय प्रभावों की सूची लेख के अंत में दी गई है।

ताप बिजलीघर :

1980 में राष्ट्र की कुल बिजली की आपूर्ति का लगभग 60 प्रतिशत ताप बिजलीघरों का था। आज देश में कोई 75 बड़े बिजलीघर हैं। छठी पंचवर्षीय योजना के अंत तक कुछ और बन जायेंगे तब कुल बिजली उत्पादन में इन सबका कुल योगदान 65 प्रतिशत होगा। ये बिजलीघर भी देश में वायु-प्रदूषण के प्रमुख स्रोतों में गिने जाते हैं।

भारत के ताप बिजलीघर कोयले से चलते हैं। इन संयंत्रों के अपशेषों में मुख्य हैं—राख [प्लाई एश] कालिख और सल्फर डाई-ऑक्साइड। भारत के कोयले में गंधक का अंश कम है (आमतौर पर एक प्रतिशत), लेकिन राख ज्यादा है—25 से 40 प्रतिशत तक। 200 मेगावाट का एक साधारण बिजलीघर, जहाँ कम गंधक वाला कोयला जलता है, 50 टन सल्फर डाईऑक्साइड और उससे भी ज्यादा कालिख फेंकता है। हमारे यहाँ इस प्रदूषण को रोकने की कोई ठीक कोशिश नहीं की गई है। कुछ बिजली घरों में राख इकट्ठा करने के यंत्र जरूर लगे हैं, लेकिन उनकी कार्यक्षमता लगभग 70 प्रतिशत ही होतीहै।

राख से सांस से संबंधित कई तरह की बीमारियाँ होती है, तपेदिक (टी.बी.) भी हो सकता है। दिल्ली के इंद्रप्रस्थ बिजलीघर के भीतर हवा एक दम दूषित हो गयी है, उसकी सभी दीवारें कालिख से काली पड़ गई हैं। नई दिल्ली तपेदिक केन्द्र ने वहां के कर्मचारियों का एक प्रारंभिक सर्वेक्षण किया था। उनमें तपेदिक की संभावना सामान्य से दुगुनी पायी गयी।

रासायनिक खाद के कारखाने :

भारत में रासायनिक खाद के 67 बड़े कारखाने हैं। सन् 1950-51 में रासायनिक खाद का उत्पादन केवल 27,000 टन था जो 1979-80 में बढ़कर 30 लाख टन हो गया। रासायनिक खाद के कारखाने से बहुत अधिक मात्रा में वायु-प्रदूषक द्रव्य निकलते हैं जिनमें से कुछ तो काम में भी है लाये जा सकते हैं, ये कीमती भी काफी है। प्रमुख अपशेष है—फ्लोरीन गैस, मिश्रकणीय द्रव्य, गंधकाम्ल या स्फुट अम्ल इकाइयों से सल्फर डाईऑक्साइड और ट्राईऑक्साइड तथा नाईट्रोजन, नाइट्रोजन ऑक्साइड्स पर आधारित संयंत्रों से अमोनिया, हाइड्रोकार्बन और भिन्नकणीय द्रव्य।

रासायनिक खाद संयंत्र की कीमत के मुकाबले में उसमें लगने वाले प्रदूषण-निरोधक यंत्र की कीमत बहुत कम है। लेकिन अधिकांश खाद कारखानों की मूल योजना में प्रदूषण निरोध के लिए पर्याप्त व्यवस्था जोड़ी नहीं गयी है।

दैनिक पत्र "हिन्दू" के अनुसार तमिलनाडु के आवड़ी स्थित रासायनिक खाद कारखाने से गंभीर खतरे की स्थिति पैदा हो गयी हैं। एक बार कारखाने की चिमनी टूट गयी थी, तब प्रदूषण बड़ा ही भयानक हो गया। सारा धुंआ 10·5 मीटर की ऊँचाई में ही फैलने लगा था। डॉक्टरों के पास सांस की तकलीफ और आँसू की जलन के बीमारों का तांता लग गया। घरों के कमरे, दरवाजे और बर्तनों—सब पर गंधक का धुंआ छा गया था।

कालिख को पुताई।

जहां-जहां ताप बिजलीघर बने हैं, उनके आसपास के कस्बे, शहर और गांव आमतौर पर बुरी तरह प्रदूषित हो गये हैं। पंजाब में भटिंडा स्थित 440 मेगावाट क्षमता का ताप-बिजली-घर लगभग 1200 टन राख (फ्लाई एश) पैदा करता है। यानी प्रति व्यक्ति लगभग एक किलो ग्राम। "इंडिया टुडे" में प्रकाशित एक रिपोर्ट में कहा गया है कि "आज समूचे शहर पर धुंए की एक स्थायी चादर छा गयी हैं। हर जगह फ्लाई एश का लेप चढ़ा हुआ है और हर सांस घातक खांसी को न्योता देती हैं। उसके इलेक्ट्रोस्टेटिक प्रिसिपिटेटर लगने के छटे साल ही टूट गये थे। पंजाब राज्य वायु प्रदूषण नियंत्रण मंडल के अनुसार यह बिजलघर प्रतिदिन 250 से 360 टन तक राख उगलता है।

राज्य के कृषि अधिकारी भी मानते हैं कि बिजली घर के आसपास हजारों एकड़ जमीन की फसल खराब हो रही हैं। एक स्थानीय डॉक्टर बताते हैं कि पिछले कुछ वर्षों में आँख, नाक और सांस के रोग बढ़ गये हैं।

बिजलीघर के संचालक प्रदूषण समस्या से इन्कार करते हैं लेकिन नये प्रिसिपिटेटर लगाने की योजना बना रहे हैं। इन्हें लगाने का काम तो हर सरकारी काम की तरह कछुए की चाल चल रहा है। चिन्तित नागरिकों ने एक प्रदूषण विरोधी समिति गठित की है। राज्य के मंत्रियों और अधिकारियों से राहत पाने में असफल हो जाने के बाद अब वे लोग स्थानीय जनमत तैयार करने में लगे हैं।

सबसे बड़ी विडंबना यह है कि उस बिजलीघर की बिजली भटिंडा को नहीं मिलती।

सूती कपड़े की मिलें :

सूती कपड़ों की मिलों के लिये नमी वाला वातावरण अच्छा रहता है। इन मिलों में कई तरह के सेंद्रिय द्रव्यों का इस्तेमाल होता है। उसके अपशेष हैं—रुई के रेशे, धुआँ, अन्य कई जलावन के अपशेष, मिट्टी के तेल की भाप, गंधकाम्ल, नाइट्रोजन ऑक्साइड, क्लोरीन, फार्मल डीहाइड और क्लोरीन डाईऑक्साइड। विशेषज्ञों का कहना है कि इन मिलों द्वारा होने वाले प्रदूषण की तरफ भारत में अभी पूरा ध्यान नहीं गया है। पर विदेशों में कड़ाई के साथ इस प्रदूषण को रोकने के नियम लागू करवाये जाते हैं।

कपड़ा मिलों के इलाके में रुई के रेशे या धूल की पतली-सी परत छायी रहती है। मिलों के भीतर और बाहर घरों में लोग इसी हवा में सांस लेते हैं। इससे दमा और तपेदिक जैसी बीमारियाँ होती हैं। बंबई के के.ई.एम. अस्पताल के एक सर्वेक्षण से पता चला है कि 10 से 16 प्रतिशत मिल मजदूरों को फेफड़े की बीमारी बाइसिनोसिस हो जाती है।

यातायात :

1980 के राष्ट्रीय यातायात नीति संबंधी दस्तावेजों के अनुसार भारत की सड़कों पर कोई 37 लाख मोटर वाहन है। उनमें 8 लाख 40 हजार कारें और जीप, 4 लाख 40 हजार ट्रक, 2 लाख 40 हजार बसें और 83 हजार टैक्सियां शामिल है। उनसे निकलने वाले धुएँ में कार्बन मोनाक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड, हाइड्रोकार्बन, अलडीहाइड और लेड आक्साइड होते हैं। डीजल इंजिन से निकलने वाले काले धुएँ में पेट्रोल के धुएँ से काफी ज्यादा भिन्नकण होते हैं, हालांकि कार्बन मोनाक्साइड, हाइड्रोकार्बन और अलडीहाइड कम होते हैं।

संकरी सड़कों में, जहां पर्याप्त रोशनी और हवा नहीं है, यातायात के प्रदूषण से अधिक दिक्कत होती हैं। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के प्रो.जे.एन. दवे के अनुसार बंबई और दिल्ली के मोटर वाहनों से निकलने वाले धुएँ से 70 प्रतिशत कार्बन मोनाक्साइड, 50 प्रतिशत हाइड्रोकार्बन और 30–40 प्रतिशत भिन्नकण हवा में फैलते हैं।

भारत के शहरों में कार्बन मोनोक्साइड का मुख्य स्रोत मोटरवाहन है। इस गैस के

कारण खून में हृदय से फेफड़ों और नाड़ियों तक आक्सीजन ले जाने की शक्ति क्षीण हो जाती हैं। घने यातायात वाले क्षेत्र में कार्बन मोनोक्साइड से भरी हवा में लगातार अधिक समय तक सांस लेते रहने से लोगों में हृदय के रोगो का खतरा बढ़ जाता है।

घरेलू प्रदूषण :

वायु प्रदूषण याने बिलकुल काले धुएँ का बादल बनाने वाली कारखानों की चिमनियां ही नहीं हैं। घरों के भीतर के धुएँ से बूढ़ों बच्चों और **महिलाओं के** स्वास्थ्य पर कारखानों के धुएँ से कही अधिक दुष्प्रभाव पड़ता है। **महिलाएँ खाना पकाने के लिए रोज कई घंटे चूल्हे के सामने बैठी रहती हैं। बच्चों की सांस ज्यादा चलती हैं। वे कद से नाटे और अधिक सक्रिय होते हैं**—इन कारणों से उन्हें जरा से विपरीत वातावरण में सांस की बीमारियों का डर हो सकता है। आमतौर पर गरीब घरों में हवा-रोशनी की भी बहुत कमी रहती हैं। हिसाब लगाया गया है कि एक आम रसोई घर में लकड़ी के चूल्हे पर खाना बनाने वाली महिला सांस के जरिए दिन भर में उतना धुँआ फेफड़ों में खींचती है, जितना हमें 20 पैकेट सिगरेट पीने से मिलता।

शहरों की खस्ता हालत :

देश के बड़े-बड़े शहर बुरी तरह से वायु प्रदूषण के शिकार हो ही गये हैं, अब यह छोटे शहरों में भी तेजी से बढ़ता जा रहा है। बल्कि भीड़ भरी सड़कों और औद्योगिक क्षेत्रों की अव्यवस्था और धुंएँ पर बिल्कुल नियन्त्रण न होने के कारण उनकी हालत बड़े शहरों से भी ज्यादा खराब है। लेकिन ऐसे क्षेत्रों के बारे में तथ्य और आँकड़े उपलब्ध नहीं है।

भारत में धूल की मात्रा भी ज्यादा है, इसलिए हमारी अपनी गतिविधियों से पैदा होने वाले प्रदूषक तत्वों को नियन्त्रित करना और भी जरूरी हो जाता है।

बम्बई :

प्रमुख चार महानगरों में बम्बई की स्थिति शायद सबसे खराब है। इसका एकमात्र कारण है शहर की विलक्षण भौगोलिक स्थिति। वहाँ अनेक भारी उद्योगों की भरमार है, जो एक से एक जुड़े हुए पूर्वी समुद्र तट से लगे और ठाणे खाड़ी तक मुख्य भूमि को पार करते हुए खड़े हैं। वायु प्रदूषण के गुनाहगारों में मुख्य ये हैं। राष्ट्रीय केमिकल्स एन्ड फर्टिलाइजर्स, द भारत रिफाइनरीज, हिन्दुस्तान पेट्रोलियम रिफाइनरीज, द टाटा थर्मल पावर प्लांट, द बाम्बे गैस कंपनी और अन्य अनेक पेट्रोकेमिकल संयंत्र, जो बीस साल पहले तेल शोधन का सिलसिला शुरू होते ही लगाये गये थे।

एक गैस कम्पनी के सिवाय ये सब बड़े कारखाने ट्रांबे-चेम्बूर क्षेत्र में हैं। 100 साल पुरानी बम्बई गैस कम्पनी लालबाग में है। लालबाग परेल में बम्बई की अधिकांश कपड़ा मिलें भी हैं जो हर वक्त अपनी चिमनियों से टनों प्रदूषक तत्वों को उगलती रहती है। रही-सही कसर पूरी करने के लिए अब राष्ट्रीय केमिकल्स एन्ड फर्टिलाइजर्स और तेल शोधक कारखानों को और फैलाने की बात चल रही हैं। बल्कि यह काम तो शुरू भी हो गया हैं। टाटा कम्पनी ने 500 मेगावाट का एक सयंत्र लगा दिया है और उतनी ही क्षमता के दूसरे संयंत्र के लिए उन्होंने अनुमति माँगी है।

भारत के दूसरे शहरों में अधिकांश प्रदूषक तत्व घरों से पैदा होते हैं। लेकिन बम्बई की हवा तो वहां के यातायात साधनों और उद्योगों से बिगड़ती है।

दिल्ली :

दिल्ली में देश के कानून बनाने वाले रहते हैं लेकिन उनकी नाक के नीचे प्रदूषण बढ़ रहा है। बदरपुर और इन्द्रप्रस्थ के ताप-बिजली घर दिल्ली की हवा को सबसे ज्यादा बिगाड़ते हैं। दोनों मिलकर रोजाना 180 टन प्लाई एश (राख) और 70 टन सल्फर डाई-ऑक्साइड उगलते हैं। इन्द्रप्रस्थ बिजली घर की चिमनियों से निकलने वाले काले घने धुएं के कारण आस-पास के इलाकों में कालिख की एक परत सदा छाई रहती है। दिलचस्पी की बात यह भी है कि इस बिजली घर के आस-पास ही विश्व स्वास्थ्य संगठन, इंडियन मेडिकल एसोसियेशन, इंडियन नेशनल साइन्स अकादमी, उच्चतम न्यायालय जैसी कई संस्थायें हैं जिनका सम्बन्ध पर्यावरण से है मगर इन्होंने भी प्रदूषण के मामले में कुछ नहीं किया है। (क्रमश :)

---

* पश्चिम के प्रमुख शहरों में वायु-प्रदूषण घटता जा रहा हैं, लेकिन भारत में यह लगातार बढ़ता जा रहा है।
* भारत के कई शहरों में **सलफर डाई-ऑक्साइड** और **पार्टिकुलेट मैटर** की मात्रा **विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा अनुमोदित** सुरक्षित स्तर से काफी बढ़ गयी है।
* भारत के एक प्रमुख प्रदूषण अनुसंधान संस्थान का कहना है कि कलकत्ता के 60 प्रतिशत लोग वायु-प्रदूषण के कारण सांस की बीमारियों से पीड़ित है।
* बम्बई-वासियों के लिए "चेम्बूर" सच-मुच "**गैस चेम्बर**" बन गया है। वह इलाका हमारे देश में रासायनिक उद्योगों का सबसे बड़ा जमघट है।
* मौसम का अप्रत्याशित परिवर्तन विश्व की सबसे बड़ी भावी समस्या बन सकता है। यह परिवर्तन वातावरण में हो रही **कार्बन डाइऑक्साइड** की भयंकर वृद्धि के कारण हो रहा है।
* विश्व के औसत तापमान में 1 से 2 डिग्री. सेन्टीग्रेड उष्णता की वृद्धि के कारण भारत में गरमियों में गरमी और सुखा बढ़ सकता है, बरसात में बारिश और बाढ़ ज्यादा आ सकती है। यह सब खेती के लिए घातक हो सकता है।
* मौसम के कार्बन डाईऑक्साइड की वृद्धि का कारण है औद्योगीकरण के लिए खनिज ईंधन का ज्यादा से ज्यादा इस्तेमाल। विश्व के कुल कार्बन डाईऑक्साइड का 75 प्रतिशत हिस्सा विकसित राष्ट्र पैदा करते हैं।

वातावरण के कुछ खास प्रदूषक

प्रदूषक	प्रमुख मानव स्त्रोत	प्रभाव	टिप्पणी
कार्बन डाई-ऑक्साइड	गरम करने, यातायात, ऊर्जा उत्पादन के लिए ईंधन का जलना।	लोगों पर सीधा प्रभाव नहीं पड़ता। कालांतर में धरती का तापमान बढ़ सकता है।	वातावरण का यह सामान्य अंग है। पेड़ों के लिए अत्यावश्यक है।
कार्बन मोनोक्साइड	ईंधन का अधूरा जलना, (जैसे–मोटर वाहन)	ऑक्सीजन के टिशू घटाता है। सांस के रोगियों पर विशेष प्रभाव।	प्राकृतिक स्त्रोतों का योगदान कम। शरीर पर यातायात के धुएँ से भी ज्यादा बुरा असर बीड़ी सिगरेट से पड़ता है।
सल्फर डाईऑक्साइड	गंधक युक्त ईंधन का जलना, जैसे कोयला व तेल।	धुएँ के साथ मिलकर ज्यादा खतरनाक होता हैं, सांस की बीमारी बढ़ाता है। दम घुटना, गले की खराश और आँखों में जलन पैदा होती है। यह वातावरण के पानी की भाप से मिलकर एसिड वर्षा पैदा करता है। अन्न की उपज घटाता है। मिट्टी और जलाशयों में एसिड पैदा करता है। इमारतों को जर्जर बना देता हैं।	
सस्पेंडेड पार्टिक्यूलेट मैटर	घरों, उद्योगों और वाहनों का	विशेष मिश्रण के अनुसार जहरीला प्रभाव अलग-अलग होता है। सल्फर डाईऑक्साइड का प्रभाव बढ़ाता है। धूप कम करता है, धूंध छाती है। जंग बढ़ाता है।	रासायनिक दृष्टि से, अत्यधिक विविधता वाला पदार्थ है। इसके स्वाभाविक स्त्रोत है—धूल भरी आंधी, भूकम्पीय विस्फोट, समुद्री बौछार।
नाइट्रोजन ऑक्साइड	मोटर वाहनों और भट्टियों में ईंधन का जलना, जंगल की आग।	बच्चों में सांस के तीव्र रोगों की छूत को और नजले की शिकायत बढ़ाता है। शहर की हवा में बम्बई धुंध भरता है। जंग पैदा करता हैं।	इसके दो अंग है—नाइट्रोजन ऑक्साइड और नाइट्रोजन डाईऑक्साइड।
कोलाटाइल हाइड्रोकार्बन्स	कार्बन युक्त ईंधन का आंशिक जलना औद्योगिक प्रक्रियाएँ, ठोस अपशेषों।	दूसरे प्रदूषकों के साथ मिलकर आँख में जलन पैदा करता है। (एक्रोजीन, अलडी हाइड), इथलीन पौधों के लिए खराब हैं। इयरोसोल कण दृश्यमानता को घटाते हैं। दुर्गंध भी फैला सकते हैं।	
आक्सीडेंट और ओजोन	मोटर वाहनों से उगला जाता है।	आँखों में जलन पैदा करता है और रोगियों के फेफड़ों को निकम्मा बनाता है। चीजों को जर्जर करता है, दृश्यमानता घटाता है। ओजोन पौधों के लिए बड़ा भयानक विषैला प्रदूषक है।	मुख्यतः यौगिक है : अलग-अलग प्रदूषक तत्वों की आपसी वातावरणी क्रिया-प्रतिक्रियाओं से बनता है। ओजोन प्राकृतिक है और वातावरण के ऊपरी भाग का एक प्रमुख अंग है।

स्त्रोत: स्टाक होम के, 1972 के मानवीय पर्यावरण सम्मेलन की पूर्व तैयारी वाला दस्तावेज 48/8.

क्या ताज के दिन पूरे हो गये ?

ताजमहल से 40 कि. मी. दूर मथुरा शहर के बाहर एक विशालकाय तेलशोधक कारखाना लगाया गया है। यहाँ सालाना 62 लाख टन अपरिष्कृत तेल साफ होगा। कुछ पर्यावरणवादियों का अनुमान है कि इस तेल-शोधक कारखाने के कारण होने वाले वायु प्रदूषण से ताजमहल को धीरे-धीरे क्षति पहुँचेगी। सरकारी अधिकारी इस सम्भावना से इंकार करते हैं।

यह विवाद 1970 के दशक के तब शुरू हुआ था जब स्थान-चयन समिति की रिपोर्ट लोगों को मालूम पड़ गई थी। पर्यावरणवादियों ने शिकायत की कि यह रिपोर्ट केवल तकनीकी और आर्थिक पहलुओं के निष्कर्षों पर आधारित हैं और उसमें पर्यावरण के प्रश्नों की पूरी तरह उपेक्षा की गई हैं। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में पर्यावरण विज्ञान विभाग के अध्यक्ष प्रो. जे. एम. दवे, वाल्टेयर के प्रो. टी. शिवाजीराव और दिल्ली स्थित इंडियन हेरिटेज सोसायटी ने संभावित भयंकर खतरे की ओर ध्यान खींचा कि इस कारखाने के कारण आगरा, फतेहपुर सिकरी, मथुरा और वृन्दावन के संगमरमर तथा सेंडस्टोन के सभी ऐतिहासिक स्थलों को क्षति पहुँच सकती है।

कारखाने की आधारशिला रखने के बाद सरकार ने 1974 में कारखाने से होने वाले प्रदूषण को घटाने के उपायों पर सुझाव देने के लिए एक विशेषज्ञ समिति नियुक्त की। उस समिति को निश्चित ही इस बात पर विचार करना नहीं था कि वहां उस कारखाने को लगाना ठीक था या नहीं, क्योंकि वह तो निश्चित हो ही चुका था।

उस समिति ने 'नीरी', भारतीय धातु विज्ञान विभाग, "टेक्नेको" नामक एक इटली की सलाहकार संस्था और अन्य अनेक विशेषज्ञ लोगों से मामले का अध्ययन कराया।

"नीरी" के मतानुसार, सल्फर डाईआक्साइड का जमाव आकार में जाड़ों में बहुत ज्यादा–40 माइक्रोग्राम प्रति घनमीटर, और गरमियों में न्यूनतम 7 माइक्रोग्राम प्रति घनमीटर रहता है। औसत मात्रा 20 मा.ग्रा. से कम हैं जो भारतीय मानक संस्थान के सीमा बिन्दु से काफी नीचे है। भारतीय धातु विज्ञान विभाग और टेक्नेको का मत था कि यदि ऐसा मान ले कि प्रति घंटा एक टन धुंआ निकलेगा तो सल्फर डाईआक्साइड की मात्रा केवल 3 मा.ग्रा. बढ़ेगी। इसलिये ताज को कोई खतरा नहीं है। टेक्नेको ने यह भी कहा कि इन स्थानों के संगमरमरी और अन्य ईमारतों के रंग बदलने का कारण काई और फफूंद हैं प्रदूषक गैस नहीं।

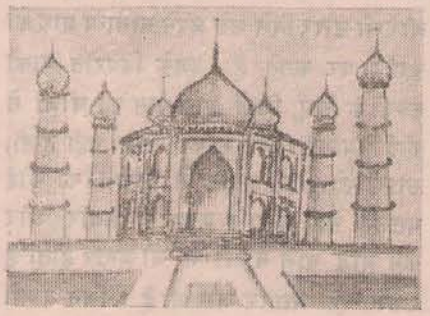

फ़िर भी समिति ने यह और जोड़ दिया कि आगरा के सामान्य प्रदूषण को रोकने से भी ताज के खतरे को भी घटाया जा सकता है। उस प्रदूषण को फैलाने वालों की सूची में दो ताप बिजलीघर, रेल्वे यार्ड और लगभग 200 फाउन्ड्रियां थी। समिति के सुझावों पर दोनों ताप बिजलीघर बन्द कर दिये गये और कोयले के रेल इंजन के बजाय डिजल के इंजन चलाये जाने लगे।

प्रो. दवे का अनुमान हैं कि कारखाने के धुंए से 20-30 टन सल्फर डाईआक्साइड, 100-150 टन कार्बन मोनो आक्साइड, 60-100 टन हाइड्रोकार्बन और 100 टन नाइट्रोजन आक्साइड और वनाडियम निकल, केडमियम और क्रोमियम जैसे ट्रेस मेटल निकलेंगे। अक्टूबर से मार्च तक पश्चिमी हवा से ये सारे प्रदूषक तत्व मथुरा से आगरा पहुँचेगे। डर हैं कि सल्फर डाई आक्साइड वातावरण की नमी पाकर सल्परस सल्फुरिक एसिड बन जाएगा। इन दोनों में पत्थर गलाने की बड़ी शक्ति हैं। श्री दवे कहते हैं कि अधिकांश उष्ण कंटिबंधीय वायु में सल्फर डाई आक्साइड की तरह ऐसिड के कण विकिरीत नहीं होते और 100 से 300 कि.मी. दूर तक जा सकते हैं।

यह तो वातावरण में एसिड बनने की और बाद में बारिश की बूंदों से जमीन पर गिरने की क्रिया हैं इसे "एसिड वर्षा" कहते हैं। उत्तर अमेरीका और यूरोप में यह काफी पुरानी समस्या है। उत्तर अमरीका के कारखानों से निकलने वाले प्रदूषक तत्वों की एसिड वर्षा के कारण कनाड़ा की खेती और जंगलों का नाश हो रहा है। नार्वे के दक्षिण भाग के जलाशयों में मछलियाँ एसिड वर्षा के कारण एकदम खत्म हो गयी हैं। भारत में एसिड वर्षा से पेड़-पौधों और प्राणियों पर पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन का अभी तक कोई प्रयास नहीं किया गया है।

श्री दवे कहते हैं कि यदि "एसिडिटी बढ़ती गयी तो 50 से 100 साल की अवधि में ताज के संगमरमर को इसनी घातक क्षति पहुँचेगी कि फिर वह लाख सुधारे सुधर नहीं सकेगी। आगे को निकले हुए जो नाजुक हिस्से है, वे सब उससे भी जल्दी हिलने लगेंगे और जिप्सम (खड़िया) बन जायेंगे।"

तेल शोधक कारखाने के आसपास पेट्रो-केमिकल उद्योग खड़े होंगे और वे उस क्षेत्र के प्रदूषण की मात्रा को और बढ़ायेंगे। परियोजना की रिपोर्ट में संकेत किया गया है कि उसकी क्षमता को और बढ़ाने की बात चल रही हैं—62 लाख टन से बढ़ाकर 1 करोड़ टन बनायी जायेगी।

प्रेमियों को अब सौंदर्य और अमर प्रेम का कोई दूसरा ही प्रतीक खोज लेना होगा।

तरकीब

किसी समस्या को हल करने या सुलझाने के लिए हम कौनसी तरकीब लगाते हैं यह हमारे व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। बच्चे समस्याओं को सुलझाने के लिये जो तरकीबें लगाते हैं उससे उनके सोचने के ढंग और उनकी मानसिकता के बारे में बहुत कुछ पता चलता है। उदाहरण के लिये अपने आस-पास की चीजों के बारे में वे क्या सोचते हैं, उसको अपने वातावरण से क्या अपेक्षायें हैं, उनका अपने आप में कितना आत्मविश्वास है, इस प्रकार की कई बातें बच्चों को समस्याओं और प्रश्नों से जूझते देखकर समझी जा सकती हैं।

हमारी कक्षा की छात्रा ऊषा का उदाहरण लीजिए। वह कक्षा को केवल एक ऐसे स्थान के रूप में देखती है जहाँ उसे कुछ काम करने को दिया जाता है। अगर काम ठीक हो गया तो प्रशंसा मिलती है अगर ठीक नहीं कर पाई तो आलोचना होती है। उत्साह न होने के कारण, हम कितनी भी कोशिश करें, ऊषा दिलचस्पी से और अच्छी तरह सोचकर प्रश्न हल करने की कोशिश नहीं करती। और फिर अगर उसने कोशिश करके किसी समस्या का उत्तर ढूंढ भी लिया तो इस उत्तर का सम्बन्ध कक्षा के बाहर किसी और चीज से भी हो सकता है यह बात उसके मन में आती ही नहीं। हां, तरह-तरह के प्रश्नों के पूछे जाने पर शायद अन्दर ही अन्दर उसे यह ख्याल जरूर आता हो कि हमारे शिक्षक भी कुछ सनकी लगते हैं, अजीबो-गरीब प्रश्न पूछते रहते हैं। प्रश्न पूछने के पीछे उसे कोई और सीखने सिखाने का उद्देश्य नहीं दिखता और प्रश्न पूछे जाने पर उसकी पहली चिंता अपनी 'आत्मरक्षा" करने की होती है।

जिन बच्चों को हम होशियार कहते हैं उन में एक खास बात जो देखने को मिलती है वह है जीवन से उनका घनिष्ट जुड़ाव। वे किसी नई चीज या प्रक्रिया को देख कर पीछे नहीं हटते बल्कि उससे जुड़ने की, उसको समझने की कोशिश करते हैं। ऐसा लगता है जैसे इनमें जीवन के प्रति एक प्रेम-सा है। आप देखेंगे कि ऐसे बच्चे अपने जीवन की कोई छोटी सी घटना को भी जीवंत और दिलचस्प ढंग से सुनते हैं। और बच्चे जो जरा सीधे या बुद्धू माने जाते हैं अकसर दिवास्वप्नों में खोये से रहते हैं और जीवन के संग इस तरह नहीं जूझते।

होशियार बच्चों के लिए दुनिया उनके विश्वास का पात्र होती है ऐसी चीज जिसे समझा बूझा जा सके। वे जो देखते हैं उसे समझने की कोशिश करते हैं, प्रश्न पूछते हैं और जो उत्तर मिले उसे अपने सामान्य ज्ञान को कसौटी पर कसते हैं। इसके विपरीत बाकी बच्चों के लिए, जिन्हें आस-पास की चीजों से कोई नियमित व्यवहार की अपेक्षा नहीं होती, उत्तरों को किसी प्रकार से परखने का कोई मतलब नहीं होता। शायद होशियार और कम बुद्धि वाले बच्चों में जो अन्तर होता है उसका एक आधार और भी हैं। जिन बच्चों को हम होशियार कहते है वें अपने इर्दगिर्द की दुनिया को अपने विश्वास का पात्र मानकर समझने की कोशिश करते हैं। जब कोई चीज समझ में नहीं आती तो घबराते या परेशान नहीं होते। नई चीजों को सीखने या समझने की प्रक्रिया की तुलना एक सृजनात्मक वैज्ञानिक के काम करने के ढंग से की जा सकती है। इसके ऊपर टिप्पणी करते हुए किसी ने कहा कि, सृजनात्मक वैज्ञानिक सबसे पहले समस्या का अध्ययन बिना किसी हड़बड़ाहट के, समय लगा कर, सावधानी और सतर्कता के साथ करता है। यह कर चुकने के बाद ही वह शीघ्रता से समस्या का हल निकालना शुरू करता है। इसके विपरीत कम सृजनात्मक लोग उत्तर खोज निकालने की जल्दी में, अव्यवस्थित ढंग से तुक्केबाजी करने में फँस जाते हैं।

अक्सर हम यह देखते हैं कि बगैर ठीक से सोचे समझे, तुक्केबाजी से उत्तर देने के प्रयास में बच्चे बड़ी कठिनाई में पड़ जाते हैं। सच तो यह है कि कोई समस्या और उसका उत्तर, यह एक ही सम्बन्ध या संरचना को देखने के अलग-अलग नजरिये हैं। समस्या एक ऐसी तस्वीर की तरह होती है जिसका कोई हिस्सा लापता हो गया हो। वही लापता हिस्सा समस्या का उत्तर होता है। **जो बच्चे समस्या के ऊपर समय लगाकर उससे जूझकर, उसे ठीक से समझने की कोशिश करते है वही उसे जल्दी से हल कर पाते हैं। जो समस्या है जो बगैर ही उत्तर देने की कोशिश करते हैं वे एकदम फँस जाते है।** कुछ बच्चे तो प्रश्न सुनते ही मानो तेजी से दौड़ लगाने लगते हैं—मगर उन्हें न तो यह पता है कि दौड़ना किस दिशा में है, न ही यह कि पहुँचना कहाँ है। वे बस उत्तर के पीछे दौड़ पड़ते हैं।

आखिर इतनी जल्दी होती क्यों है उन्हें ? आइये देखें उदाहरण दो लड़कियों—रेणुका और प्रेमा का। रेणुका तुक्केबाजी करती जबकि प्रेमा सावधानी से सोचकर उत्तर देती है। वे दोनों एक गणित का हल निकालने की कोशिश कर रही हैं।

$\frac{3}{4}+\frac{2}{5}$ कितना होता है ?

रेणुका : (अपनी आदत के मुताबित ऊपर और नीचे की संख्याओं को अलग-अलग जोड़ कर) इसका उत्तर $\frac{5}{9}$ होना चाहिए, ठीक है न।

प्रेमा : $\frac{5}{9}$ तो $\frac{3}{4}$ से कम है। फिर $\frac{3}{4}$ और $\frac{2}{5}$ का जोड़ $\frac{5}{9}$ कैसे आ सकता है।

वह समझ गई थी कि दोनों अंकों का जोड़ $\frac{3}{4}$ से तो अधिक ही होगा और इसलिये $\frac{5}{9}$ सही उत्तर नहीं हो सकता।

रेणुका : $\frac{3}{4}$ कहाँ से आया ?

प्रेमा : अरे, वह तो प्रश्न में ही है।

मुझे शक है कि कितनी भी कोशिश करने पर रेणुका को प्रेमा का तर्क समझाया जाता है, दूर रही बात कि रेणुका अपने आप इस

प्रकार से विचार करना सीख पाती। मंदबुद्धि वाला बच्चा, रेणुका की तरह अंधाधुंध उत्तर देता है जबकि होशियार बच्चा समय लगाकर समस्या को समझता है। मगर क्या होशियार और मंदबुद्धि दोनों के बीच का अन्तर केवल विचार करने के कौशल पर निर्भर करता है, जिसे प्रशिक्षण के द्वारा सिखाया जा सके? मुझे नहीं लगता कि बात इतनी सरल है। अच्छा विचारक बिना किसी हड़बड़ाहट के, आराम से इसलिए सोच पाता है क्योंकि उसे अनिश्चितता या उत्तर के अभाव में परेशानी नहीं महसूस होती। वह किसी बात को न समझने या जानने की स्थिति को स्वीकार कर पाता है। कमजोर विचारक न जानने की स्थिति सहन नहीं कर पाता और ऐसी हालत में वह बेचैन होकर अव्यवस्थित ढंग से उत्तर के लिए हाथ पैर मारता है।

कक्षा में प्रश्न पूछे जाने पर शायद सभी बच्चों को यह डर होता है कि उत्तर कहीं गलत न हो जाए। सही उत्तर दे पाने की इच्छा भी सभी में होती है। इसलिये रेणुका जैसे बच्चों में आराम से सोच-विचार न कर पाने का कारण एक अतिरिक्त प्रकार का डर हो सकता है। और वह है कोई भी उत्तर न दे पाने का डर। रेणुका यह तो चाहती ही थी कि उसका उत्तर ठीक हो मगर इस बात से भी अधिक रेणुका यह चाहती थी कि वह कोई उत्तर दे पाये। कोई भी उत्तर न दे पाना बहुत शर्म की बात हो जाती है और इस मानसिक दबाव से बचने के लिए वह उल्टा-सीधा कैसा भी उत्तर दे डालती है चाहे वह सही न भी हो। यह बात अक्सर बच्चों में देखने को मिलती है। (वैसे बड़े भी इस कमजोरी का अक्सर शिकार होते हैं।) समस्या को पाते ही उन से उत्तर दिए बिना नहीं रहा जाता भले ही उत्तर सही होने का विश्वास उनमें न हो।

डर और मानसिक दबाव के साये में की गई उत्तर की खोज, समस्या को सहन करने और समझने की अक्षमता, यही है कमजोरी के मुख्य लक्षण मगर इस प्रकार का डर और मानसिक दबाव पैदा कैसे हो जाता है।

शायद आप कहें कि ये बातें तो ठेठ मनोविज्ञान के क्षेत्र की हैं। पर ऐसा शायद है

(शेष पृष्ठ 38 पर)

पीढ़ी दर पीढ़ी

—अशोक भाटिया

उसके पिता उसे पढ़ा नहीं सके थे। उसने सोचा, "मैं अपने बच्चों को जरूर पढ़ाऊंगा।" उसने अपने बच्चे को स्कूल में प्रवेश दिलाया।

एक दिन बच्चे ने किताबों की मांग की।

दूसरे दिन बच्चे ने स्कूल-ड्रेस की मांग की।

तीसरे दिन बच्चे ने फीस की मांग की। उधर फसल की कटाई के दिन चल रहे थे, पिता ने कहा, बेटा, फसल मंडी में जायेगी, तब मजदूरी मिलेगी।"

बच्चा पिता का हाथ बटाने लगा।

कुछ दिन बाद पाठ याद न होने पर उसे सजा मिली।

कुछ दिन बाद स्कूल-ड्रेस न होने पर उसे घर भेज दिया गया।

कुछ दिन बाद फीस न देने पर बच्चे का नाम काट दिया गया।

वह बच्चा फिर कभी स्कूल नहीं गया। वह खेत में काम करने लगा।

जब वह बड़ा हुआ, तो उसने सोचा, 'मैं अपने बच्चों को जरूर पढ़ाऊंगा।"

(कथाबिंब से साभार)

मार्ग-दीप

घनघोर अंधेरी रात।

शिष्य ने गुरु से शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात् विदाई लेते हुए कहा-"गुरुवर! इस घनघोर काली रात में गन्तव्य तक पहुँचने में क्या आप मेरी कोई सहायता नहीं करेंगे।

गुरु ने क्षण भर विचार कर पास में रखा मिट्टी का दीपक उठाया और जलाकर शिष्य के हाथ में थमा दिया। फिर बोले, "आओ तुम्हें मैं आश्रम के बाहरी द्वार तक छोड़ आऊँ।" दीपक के प्रकाश में दोनों गुरु और शिष्य आश्रम के द्वार तक पहुँचे। शिष्य को स्नेहपूर्वक विदाई देते हुये गुरुवर ने कहा "अच्छा वत्स, तुम्हारा कल्याण हो, जाओ।"

शिष्य चलने को हुआ तो गुरु ने फूंक मारकर दीपक को बुझा दिया।

शिष्य ने आश्चर्यपूर्ण मुद्रा में गुरु की ओर देखते हुए कहा "प्रभु, यह क्या? आपने मेरा साथ छोड़ने के साथ-साथ यह दीपक क्यों बुझा दिया?

गुरु ने कहा, वत्स मैं तो तुमसे इसलिये अलग हुआ कि कहीं तुम्हें अनुसरण करने की आदत न पड़ जाए और यह दीपक इसलिए बुझाया कि दूसरों के जलाये दीपक का कोई मूल्य नहीं होता। अपना ही दीपक मार्ग आलोकित कर सकता है।

—तुलसीराम हर्णे
शिक्षक शा. बहु. कन्या, शा. हरदा (म.प्र.)

शिक्षक वृद्धि अभियान

डॉ. रामनारायण स्याग

जैसे ही बस उतरा कुछ छात्रों ने मुझे देखा एवं मुझे घेर लिया। सभी ने बड़े सम्मान के साथ नमस्ते किया। मैंने पूछा पढ़ाई कैसी चल रही है ? इतना पूछना भर था कि तीन-चार बच्चे एक साथ बोल पड़े हमारी कक्षा में प्रयोग नहीं होते जबकि अन्य कक्षाओं में होते हैं। वे बच्चे बोलते जा रहे थे कि कई दिनों से तो विज्ञान की पढ़ाई हो ही नहीं रही, सर 15 दिनों के लिए चुनाव की ड्यूटी पर हैं। (मैं बच्चों की चेतना पर हैरान था और खुश भी) मैंने बच्चों से कहा यदि पढ़ाई नहीं हो रही तो आप मिलकर अपने प्रधानाध्यापक महोदय के पास जाएँ और अपनी दिक्कत उन्हें बताएँ। तब एकदम सब बच्चे चुप हो गये। कुछ क्षण के बाद चुप्पी टूटी और एक बच्चा बोला इससे तो हमारे सर नाराज हो जायेंगे। तब मैंने कहा, "भई तुम सर की कोई बुराई थोड़े ही कर रहे हो, तुम तो यह कहने जा रहे हो कि जब तक विज्ञान के सर किसी काम से लम्बी छुट्टी पर हैं तब तक के लिए पढ़ाई की कुछ व्यवस्था कर दें।" परन्तु बच्चों ने साफ मना कर दिया। उसी समय चार बच्चों ने अपने-अपने हाथ दिखाए जिन पर डण्डों के निशान पड़े दिख रहे थे। उन बच्चों ने बताया कि "एक सर स्कूल में आये हुए थे उनका काल-खंड था, वे कक्षा में नहीं आये, हम उन्हें बुलाने के लिए गये, तब उन्होंने गुस्से में आकर हमें दो-दो डण्डे मारे।" मैं चुपचाप बच्चों की बात सुनता रहा एवं सोचता रहा कि बच्चों ने शिक्षक को कक्षा में पढ़ाने हेतु जाने का कहकर कौन-सा ऐसा बुरा काम कर दिया जिसकी वजह से उन्हें मार पड़ी। यदि शिक्षक किसी अन्य जरूरी काम में व्यस्त थे तो वे वैसा कह देते।

मैं शाला में गया। प्रधानाध्यापक से मिला तथा कहा कि अमुक कक्षा के एक सर "15 दिनों के लिए मतदाता सूचियाँ सुधारने की ड्यूटी पर हैं तो आप उस कक्षा की पढ़ाई की व्यवस्था कर दें।" वे बड़े सहज एवं नम्र भाव से बोले "मैं क्या कर सकता हूँ। इस शाला के तीन शिक्षक मतदाता सूचियाँ बनाने के काम में लगा रखे हैं। वैसे यदि सभी शिक्षक शाला में होते हैं तब भी मुश्किल से सही शिक्षण व्यवस्था कर पाते हैं क्योंकि शिक्षकों की कमी है। और अब तीन शिक्षक नहीं है अतः व्यवस्था कर पाना असंभव है।" मैंने कहा "आप ज्यादा शिक्षकों की माँग करें।" तब उन्होंने कहा "किससे करें, कौन है सुनने वाला। सभी अधिकारियों को पता ही है कि अधिकांश ग्रामीण शालाओं में शिक्षकों की कमी है।" एक प्रजातान्त्रिक देश में मतदाता सूचियाँ बनाना, सुधारना इत्यादि कार्य भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। लेकिन साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि बच्चों की पढ़ाई में बाधा न पहुँचे। क्या मत सूचियों के बनाने/सुधारने जैसे महत्वपूर्ण कार्य में शिक्षकों के अतिरिक्त अन्य कर्मचारियों का भी सहयोग नहीं लिया जा सकता है। दूसरा, जिस शाला में पहले ही शिक्षक कम हैं उस शाला से अधिक शिक्षकों को ऐसे कार्य में लगाने से पूरे स्कूल का शैक्षिक माहौल खत्म हो जाता है। अतः किस शाला से कितने शिक्षकों को ऐसे कामों में लगाया जाए, यह योजनाबद्ध तरीके से शिक्षा अधिकारियों/प्रधानाध्यापकों से चर्चा के बाद तय होना चाहिए।

इसी सिलसिले में मैंने वृत्त के सहायक शाला निरीक्षक महोदय से चर्चा की। उनका भी कहना था कि शिक्षकों की नियुक्ति तो वे कर सकते नहीं। जब तक ज्यादा शिक्षकों को भरती करके ग्रामीण शालाओं

(शेष पृष्ठ 38 पर)

पाठशाला

पैर की खुजाल को
रोके खड़े बच्चे
राष्ट्रगीत में
नहीं हिलते
मास्टरजी,
विसिल बजाकर
हिलते भी हैं
डुलते भी हैं।

× × ×

मास्टरजी
शुरू से ही
बच्चों को
घुटने टेकने की आदत
डालते हैं।

× × ×

बच्चे
जोर-जोर से
प्रभु की प्रार्थना
गाते हैं
दहशत
प्रार्थना बुलवाती है। —बंशी माहेश्वरी

"पाठशाला" से साभार

नरवर में बाल मेला

—डॉ. उमेश वशिष्ठ

दिनांक 4-2-85 को नरवर शाला संकुल में सभी सम्बन्धित माध्यमिक शालाओं में "होशंगाबाद विज्ञान" पढ़ने वाले बच्चों का एक अद्भुत मेला लगा। सुबह 11 बजे मेला शुरू होना था, पर 1.30 बजे से ही दूर दराज के बच्चों ने आना शुरू कर दिया था। कुल 6 माध्यमिक शालाओं—नागझिरी दत्ताना, नरवर, पालखन्दा, पिपलौदा द्वारकाधीश और नौगवा में सातवीं कक्षा के 160 बच्चे आने थे (पहुँचे 141 ही)। कार्यक्रम शुरू होने से पहले ही सभी बच्चों को 4 वर्गों अ, ब, स एवं द में बाँट दिया गया। अब कार्यक्रम शुरू हो गया बिना किसी तामझाम एवं औपचारिकता के। सर्वप्रथम दो वर्गों स और द के बच्चों को मिट्टी तथा विभिन्न वस्तुओं (रंगीन कागज, धागा, कपड़ा, बाँस की खपच्चियाँ, रुई इत्यादि) से खिलौने बनाने थे। इस कक्ष में बड़ा ही सम्मोहक दृश्य था। दो-दो कतारों के बीच में विभिन्न प्रकार का सामान पड़ा था जैसे माचिस की काड़ियां, खाली डिब्बियाँ, बाल्व ट्यूब, रंगीन कागज, कैंची, गोंद, रूई, सफेद कटे कागज, रंगीन प्लास्टिक के विभिन्न आकारों की छोटी-छोटी आकृतियाँ, रंगीन कागजों के छोटे-छोटे त्रिभुज, चतुर्भुज, षटकोण, रबर बैण्ड आदि। घंटी बजते ही प्रत्येक छात्र को इनमें से किन्हीं भी चीजों से एक-एक वस्तु (खिलौना) बनानी थी। मिट्टी के खिलौने बनाने वाले छात्रों ने तो कमाल ही कर दिया। मात्र पन्द्रह मिनट में विजयसिंह ने हाथी पर आदमी बनाकर बैठा दिया। देखते ही देखते विभिन्न प्रकार की आकृतियां जन्म लेने लगी। मिट्टी तथा अन्य पदार्थों से बने रंग-बिरंगे हाथी, ऊंट, बैल, लोमड़ी, बन्दर, भैंसे, चिड़ियाँ, तोता, शिवजी, जीप, मोटर, पानी का इंजिन, मोटर साइकिल, रेडियो, मन्दिर, सुअर, मेज-कुर्सी, टेपरिकार्डर, फूलदान, चक्की, छात्रों ने हँसते-हँसते बना दिये। माचिस और गत्ते से भी कई खिलौने बनाए गए।

इसी समय अ और ब वर्गों में अलग-अलग प्रादर्श पाठ पढ़ाए जा रहे थे। इसका उद्देश्य था कि एक स्कूल के छात्र देखें कि अन्य स्कूलों के अध्यापक कैसे पढ़ाते हैं। पढ़ाने का ढंग वही चिर परिचित "स्वयं प्रयोग करो और निष्कर्ष निकालो" थी। पढ़ाये जा रहे अध्याय थे "गैसें और हवा"। एक घण्टे के पश्चात् दोनों प्रकार के कार्यक्रमों को अदल-बदल दिया गया अर्थात् अब अ और ब समूह खिलौने बनाने आ गए और स तथा द समूह अध्याय पढ़ने। इस बार खिलौने बनाने के कार्य में और भी विविधता आई। एक बच्चे ने बनाया तीरकमान। एकलव्य के श्री स्याग बहस छेड़ बैठे कि यदि कमान की रस्सी और छोटी या लंबी होती तो क्या होता अर्थात् कमान की बोस की खपच्ची के कम या ज्यादा मोड़ने पर तीर ज्यादा दूर जायेगा या नहीं। श्री यतीश कानूनगो ने हल सुझाया किन्तु ज्यादा सन्तोष नहीं हुआ। आखिर "होशंगाबाद विज्ञान संस्कृति" के अंग जो ठहरे। तत्काल बच्चे ने दो और तीरकमान बनाए। एक कमान पहले कमान से ज्यादा मुड़ा था तथा दूसरा कम और फिर प्रयोग शुरू हुआ। देखा गया कि कम मुड़ें कमान यानि ज्यादा लम्बी रस्सी वाला से तीर अधिक दूर गया। तब एक सवाल उठा "ऐसा क्यों होता है"। चर्चा से हल खोजा। स और द समूहों में क्रमशः "जड़ और पत्ती" एवं "कठोर और मृदु जल" अध्याय भी इसी समय पढ़ाए जा रहे थे।

इन कार्यक्रमों की यह विशेषता नहीं थी कि खिलौने बनाए जा रहे थे या छात्र प्रयोग कर रहे थे। असली चीज यही थी कि बच्चे बड़े उत्साहित, खुश, निडर, निःसंकोची होकर कार्य कर रहे थे। बच्चों के चेहरे और आँखों की चमक देखते ही बनती थी। एकलव्य के सभी कार्यकर्त्ता तथा स्कूल के शिक्षक एवं अनुवर्तनकर्त्ता भी ऐसे कार्य कर रहे थे मानो सभी वर्षों से एक दूसरे को जानते हो और परिवार का कोई समारोह हो रहा हो। किसी को बताना नही पड़ रहा था कि यह करो, यह न करो। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं ही जिम्मेदारी ले लेता था। भले ही वह श्याम-पट्ट साफ करने की या छात्रों को समूह वार बैठाने की या छात्रों को मिट्टी या अन्य सामग्री

देने की। ऐसा दृश्य मेरे देखने में पहले नहीं आया।

एक बजे एक घंटे की खाना खाने की छुट्टी हुई। सभी छात्र और शिक्षक अपना-अपना खाना साथ लाए थे। ठीक दो बजे शुरू हुए दूसरे कार्यक्रम। अ और ब समूह के बीच हो रही थी पहेली प्रतियोगिता। दोनों समूहों से कुछ चुने हुए छात्रों से बारी-बारी से प्रश्न पूछे जाते थे। सही उत्तर मिलने पर दो अंक, गलत पर शून्य और यदि दूसरा समूह उत्तर दे तो (जब पहला समूह उत्तर न दे पाये तब) उसका एक अंक। यदि दोनों समूहों के छात्र अमुक प्रश्न का उत्तर न दे पायें तब वह प्रश्न सभी के लिए खुला छोड़ देते। किसी-किसी प्रश्न के पूरक प्रश्नों पर चर्चा लम्बी और रोचक हो जाती। सूर्य ग्रह है या तारा इस पर अच्छी चर्चा हुई। इसी दौरान स और द समूह सांपों पर बनी स्लाइड्स देख रहे थे। स्लाइड्स पर टिप्पणी एवं जानकारी भी अरविन्द गुप्ते कर रहे थे।

स्लाइड शो का उद्देश्य सांपों के बारे में जानकारी देना था। हमारे देश में पाए जाने वाले विषैले और विषहीन सांपों के बारे में जानकारी देते हुए यह बताया गया कि सांप वास्तव में मनुष्य के शत्रु न होकर मित्र हैं, क्योंकि वे चूहों को नष्ट करते हैं।

तीन बजे फिर समूहों की अदला बदली हुई। अ और ब समूह स्लाइड्स् देख रहे थे तथा स और द समूह पहेली प्रतियोगिता में हिस्सा ले रहे थे। फिर वही रोमांच और रोचकता भरे प्रश्न और उससे भी रोचक उनके उत्तर।

एक कक्ष में प्रदर्शनी लगी हुई थी। प्रदर्शनी में शाला संकुल की विभिन्न शालाओं के छात्रों द्वारा बनाए गए खिलौने, चार्ट, इत्यादि रखे हुए थे। सभी छात्रों एवं शिक्षकों ने प्रदर्शनी का अवलोकन किया।

चार बजे सब छात्र और शिक्षक इकट्ठे हुए। अच्छी प्रदर्शनी एवं कार्य हेतु छात्रों और अध्यापकों को एकलव्य के निदेशक श्री बैहार ने पुरस्कार दिए।

अन्त में बच्चे अपने अपने गांवों को चले गए। अब शिक्षकों से श्री बेहार की बातचीत हुई। शिक्षकों ने विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम को लागू करने में आने वाली कठिनाइयों को बताया तथा उनके निदान हेतु कुछ सुझाव भी दिये।

निर्णायक निर्णय नहीं कर सके

नरवर शाला संकुल में 4 फरवरी 85 को एक बाल मेला था। उसमें शाला संकुल की सभी माध्यमिक शालाओं से 141 बच्चों ने भाग लिया। इस मेले में एक खिलौने बनाने का कार्यक्रम था। सभी बच्चों ने मिट्टी तथा अन्य दी गई सामग्री से एक-एक खिलौना बनाया। इन खिलौनों में से तीन सबसे अच्छे खिलौने चुनकर उन्हें प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरस्कार देने हेतु एक तीन सदस्यीय कमेटी बनाई गई। कमेटी के सदस्यों ने जब एक-एक खिलौने को बारीकी से देखा। निर्णायक कमेटी से सदस्य हैरान हो गये कि सभी खिलौने इतने अच्छे बने हुए हैं कि इनमें से प्रथम तीन किस आधार पर छांटें। हमें (मैं भी इस कमेटी का सदस्य था) लगा कि प्रत्येक खिलौना अपने आप में कोई न कोई खूबी लिए हुए था, जिसमें बच्चों ने अपनी कल्पना-शक्ति को बहुत सुन्दर तरीके से दर्शाया था। निर्णायक दल के लिए बड़ा मुश्किल काम था। काफी देर खिलौनों को बारीकी से देखते रहे एवं चर्चा करते रहे। अतः में हमने निर्णय लिया कि पुरस्कार हेतु किसी विशेष खिलौने को नहीं चुनेंगे क्योंकि सभी खिलौने अपने आप में मौलिक एवं पुरस्कार देने योग्य थे। इस समय हमारे दिमाग में कई प्रश्न उठ रहे थे।

—आखिर हम पुरस्कार क्यों देते हैं?

—इन पुरस्कारों से बच्चों के मन पर क्या प्रभाव पड़ता है?

—जिन बच्चों को पुरस्कार नहीं मिलता क्या उनमें हीन भावना तो उत्पन्न नहीं होती?

—व्यक्तिगत एवं सामूहिक पुरस्कार देने से बच्चों पर क्या प्रभाव पड़ता है?

—पुरस्कार हेतु चयन का आधार क्या हो? किन सिद्धान्तों पर तय किए जाए?

—क्या आप उपरोक्त सवालों पर अपने विचार व्यक्त करके हमारी मदद कर सकते हैं?

(पृष्ठ 35 का शेष)

नहीं। यूं भी तो हो सकता है कि कोई व्यक्ति अपने निजी स्तर पर चीजों को शंका और अविश्वास की नजर से देखे मगर फिर भी दुनिया और प्रकृति में उसको एक प्रकार का बौद्धिक विश्वास हो। क्या ऐसा सम्भव नहीं है? और अगर सम्भव है भी तो क्या ये बातें शाला में सिखाई जा सकती हैं?

एक और बात। यह जो समस्याओं से जूझने का आत्मविश्वास या उनको समझने की इच्छा कुछ लोगों में होती है यह उनके व्यक्तित्व का एक महत्त्वपूर्ण अंग होता है, उनके व्यवहार में एक आदत जैसा बन चुका होता है। जाहिर बात है कि आदतें उतनी ही गहरी होंगी जितनी जल्दी जीवन में उनकी नींव डाली जाएगी। इसीलिए जरूरी है कि बिल्कुल छुटपन से ही ऐसा वातावरण बनाया जाए जिससे यह गुण जन्म लेकर फल-फूल सके।

(जॉन होल्ट की पुस्तक "हाउ चिल्ड्रेन फेल" से अनुवाद)

(पृष्ठ 36 का शेष)

में नहीं भेजेंगे तब तक शिक्षकों की कमी बनी रहेगी। मैं सोचता रहा अब किससे मिलूं एवं किसको सुनाऊँ यह दुखड़ा। क्या जिला शिक्षा अधिकारी या अन्य उच्च अधिकारी शिक्षकों की कमी दूर करने के लिए कोई सार्थक कदम उठा सकते हैं? **क्या छात्र वृद्धि अभियान के साथ-साथ शिक्षक वृद्धि अभियान चलाना जरूरी नहीं? छात्र वृद्धि अभियान शिक्षक चला रहे हैं तो शिक्षक वृद्धि अभियान अधिकारियों को चलाना चाहिये, वरना पहले अभियान का तो कोई मतलब नहीं।**

जरा सिर तो खुजलाइये

प्रिय पाठक,

यह कालम आपको कैसा लग रहा है हमें लिखकर बताइये। क्या सिर इतना अधिक तो नहीं खुजलाना पड़ रहा कि सिर के बाल ही गिरने लगे हों ? और हां, एक बात और हमने तय की है कि जो पाठक इस कालम की सब पहेलिओं के सही उत्तर हमें लिख भेजेंगे उनके नाम हम पत्रिका के अगले अंक में छापेंगे। उत्तर इस पते पर भेजिये "सम्पादक, होशंगाबाद विज्ञान, एकलव्य, नेहरू कालोनी, हरदा, म.प्र."।

1. रफ्तार का बढ़ना

एक ट्रक अपने सफर की आधी दूरी 15 कि.मी. प्रति घंटे की रफ्तार ये तय करता है। सफर की बाकी आधी दूरी ट्रक को किस रफ्तार से तय करनी चाहिये अगर वह चाहता है कि कुल सफर की औसत रफ्तार 30 कि.मी. प्रति घंटा रहे ?

2. समझदार दूधवाला

एक दूध वाला अपनी दूध से भरी बाल्टी में से चार लीटर दूध निकालना चाहता है मगर उसके पास केवल दो और बरतन हैं-- एक पाँच लिटर का नपनाघट और एक तीन लिटर का। फिर वह चार लिटर दूध नाप कर कैसे अलग करे? याद रहे बाल्टी और इन दो नपना घटों के अलावा उसके पास कोई बरतन नहीं है।

3. रेखाओं का चक्कर

बिना किसी रेखा को दोहराये हुये ऐसी चार रेखाएं खींचिये जो इन सब बिन्दुओं में से होकर गुजरें।

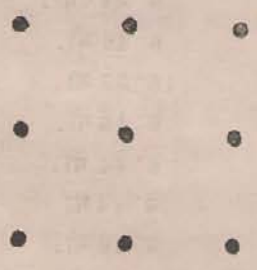

4. शायद आप जानते होंगे कि अमीबा एक ऐसा सूक्ष्म जन्तु है जो अपने को दो भागों में बाँटकर एक नया अमीबा पैदा कर लेता है। मान लीजिये दो बराबर साइज की बोतले हैं जिनमें से पहली में एक अमीबा है और दूसरी में दो अमीबा। अगर एक अमीबा से दो बनने में तीन मिनट का समय लगता है और अगर दूसरी बोतल के दो अमीबा तीन घंटे में नये अमीबा पैदा करके पूरी बोतल भर सकते हैं तो पहली बोतल के एक अमीबा को अपनी बोतल भरने में कितना समय लगेगा ?

पिछले माह की पहेलियों के हल

(1) गिरह न खुले

वैसे देखने में शायद प्याली (कप) को डोरी से निकालना संभव न लगे मगर है यह बहुत आसान। फंदे को उस जगह पर पकड़िये जहाँ वह उन दो डोरियों के आगे से गुजर रहा है जिन पर लटका है। फंदे को खेंच कर इतना बड़ा कर लीजिये कि वह कप के ऊपर से निकल जाये। कप के ऊपर से निकाल कर फंदे को दूसरी तरफ लाने पर कप डोरी में से छूट जायेगा।

(2) सुस्त रफ्तार

घोंघे को कुएं से बाहर निकलने में 28 दिन लगेंगे। सत्ताइस दिन में सत्ताइस फुट चढ़ने के बाद जब अठाइसवें दिन वह तीन फुट चढ़कर कुएं के उपर पहुंचेगा तो फिर वापस नहीं फिसलेगा।

(3) चिड़ियाघर की जनसंख्या

अगर चिड़ियाघर में 30 सिर और 100 टाँगे हैं तो इसका अर्थ हुआ कि वहाँ पर 10 चिड़िया और 20 चौपाये हैं।

जिन पाठकों को गणित का उपयोग पसंद है वे इस प्रश्न को बीजगणित की मदद से हल कर सकते हैं। अगर हम मान लें कि चिड़ियाघर में x चिड़िया और y चौपाये हैं तो हम दो समीकरण बना सकते हैं।

$$x+y=30$$

$$2x+4y=100$$

जिनको हल करने से मिलता है $x=10$ or $y=20$

(4) बँटवारा

अंग्रेजी के एल के आकार की जमीन के चार बराबर टुकड़े चार छोटे एल बना कर किये जा सकते हैं।

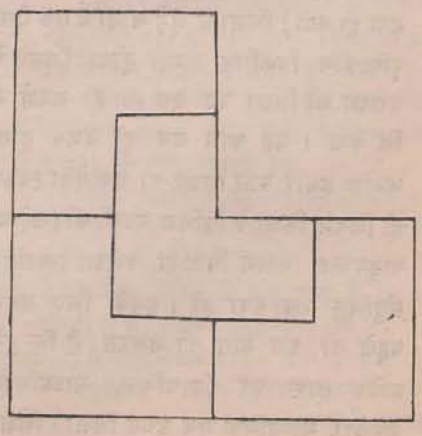

परीक्षा का भूत कैसे हटे

—डॉ. रामनारायण स्याग

कुछ लोगों का विश्वास है कि परीक्षा का भूत हट जाने पर निष्ठावान एवं परिश्रमी शिक्षक अधिक मुक्त होकर पूरे मनोयोग से शिक्षण कर सकेंगे। क्या यहां परीक्षा का भूत हटाने का अर्थ यह तो नहीं लेते कि परीक्षा समाप्त कर दी जाए? यदि कुछ लोग ऐसा सोचते हैं तो मैं इस विचार से सहमत नहीं हूँ। क्योंकि मैं परीक्षा को शिक्षा से अलग देखता ही नहीं हूँ। मैं परीक्षा को शिक्षा का ही एक अंग मानता हूँ। किसी शरीर का एक अंग टूट जाने पर यदि आप शरीर को अधिक सार्थक समझते हैं तो आपकी इच्छा।

असल में जाने अनजाने में हमसे एक भूल हो गई कि हमने शिक्षा रूपी शरीर में **परीक्षा को जरूरत से ज्यादा महत्व देकर उसे केन्द्र मान लिया तथा अन्य घटकों को कुछ नजर-अंदाज कर दिया। अब हम दोष दे रहे हैं बेचारी परीक्षा को।** यदि परीक्षा को वही काम करने दें जिसके लिए इसकी उत्पत्ति एवं विकास किया तो दिक्कत दूर हो सकती है। परीक्षा तो एक ऐसा साधन है जिससे हम यह जान सकें कि हम शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति कहाँ तक कर पाये हैं, हमारे पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियां कहाँ तक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कारगर हैं।

अब सवाल है छात्रों, शिक्षकों एवं पालकों के दृष्टिकोण बदलने का (वैसे यह भर समझना महत्वपूर्ण होगा कि ऐसा दृष्टिकोण बना ही क्यों) शिक्षा से जुड़े लोगों में एक ऐसा दृष्टिकोण विकसित करना होगा जिससे वे परीक्षा को शिक्षा का एक अंग ही समझें न कि केन्द्र। यह काम तब ही संभव होगा जबकि हमारे पास शिक्षा का एक ऐसा स्वरूप हो जिसमें शिक्षा के विभिन्न घटकों को (उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियां, परीक्षा इत्यादि) संतुलित रखा गया हो। इसके लिए सबसे पहले तो इस बात की जरूरत है कि हमें प्रत्येक स्तर पर (प्राथमिक, माध्यमिक, उच्चतर माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा) शिक्षा के उद्देश्यों का स्पष्टीकरण हो। फिर प्रत्येक स्तर पर पढ़ाये जाने वाले विषयों के उद्देश्यों के अनुरूप पाठ्यक्रम एवं पाठ्य पुस्तकें विकसित हों। इसी प्रकार शिक्षण विधियां ऐसी हों कि जिससे छात्रों को उन प्रक्रियाओं से गुजरना पड़े जिनसे कि उस विषय के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। यह परखने के लिए कि हमारे छात्र अमुक विषय के उद्देश्यों को कितना प्राप्त कर पाये हैं, उसी अनुरूप परीक्षा लेनी होगी। यदि हम शिक्षा का ऐसा ढांचा विकसित कर उसे सामान्य शालाओं में लागू कर पाये तो उसमें ऐसा तन्त्र बनाये जिससे लगातार विकास और सुधार की गुंजाइश बनी रहे तो ही परीक्षा के भूत से बच सकते हैं।

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम ऐसे प्रयास का उदाहरण है जिसमें शिक्षा के सभी घटकों को एक साथ लेकर चले हैं। इस उदाहरण के माध्यम से उपरोक्त बात स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

विज्ञान शिक्षण का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है वैज्ञानिक पद्धति से प्रशिक्षण प्राप्त करना। वैज्ञानिक पद्धति में बहुत से घटक हैं उनमें कुछ हैं, जिज्ञासा, बारीक और सही अवलोकन लेना; अवलोकन व आँकड़ों को व्यवस्थित करके प्रस्तुत करना—तालिका, स्तम्भालेख, ग्राफ, रेखाचित्र बनाना, आंकड़ों का विश्लेषण करना; तार्किक विवेचना द्वारा निष्कर्ष निकालना; विवेचन के तार्किक क्रम में स्पष्ट, सटीक व नये प्रश्न पूछना, सामान्यीकरण एवं अमूर्त चिन्तन इत्यादि।

"बाल वैज्ञानिक" पुस्तकों में उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु प्रावधान रखे गये हैं। अब बात आई शिक्षण विधि की। कक्षा में या कक्षा के बाहर (परिभ्रमण) छात्र-छात्राएँ उपरोक्त उद्देश्य की प्राप्ति हेतु विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजरते हैं। उदाहरण के लिए कक्षा छटी के घटबढ़ और सन्निकटन अध्याय लेते हैं, इस अध्याय में छात्र पैमाने से विभिन्न वस्तुओं को बारीकी से नापते हैं, उन नापों को व्यवस्थित ढंग से लिखते हैं, पूरी कक्षा से आये नापों में से अधूरे व गलत आँकड़े पहचानते हैं, इन अधूरे व गलत आकड़ों को गणना में रखना है या नहीं, तर्क के साथ अपना विचार देते हैं, फिर उन आँकड़ों से स्तम्भालेख बनाते हैं एवं निष्कर्ष निकालते हैं। यहि प्रक्रिया कक्षा का प्रत्येक छात्र करता है।

शिक्षा का अगला घटक है परीक्षा। यहाँ शिक्षक परीक्षा के माध्यम से यह जानने का प्रयास करता है कि उपरोक्त वैज्ञानिक प्रक्रियाओं में कौनसा छात्र किस सीमा तक प्रशिक्षित हुआ है। अतः शिक्षक उसी के अनुरूप प्रश्न बनाता है। उदाहरण के लिए इस अध्याय पर हाटपीपल्या शाला संकुल में पिछले वर्ष की परीक्षा में निम्न प्रश्न पूछा गया था।

1. कक्षा छह के विद्यार्थियों ने कक्षा के बाहर बरामदे की लम्बाई नापी। लम्बाई नापने के लिये एक मीटर स्केल का उपयोग किया। कक्षा की 15 टोलियों के आँकड़े निम्नानुसार थे।

टोली नं.	बरामदे की लंबाई का माप
1.	6·46 मी.
2.	6·42 मी.
3.	6·5 मी.
4.	6·44 मी.
5.	646 सेमी.
6.	6·48 सेमी.
7.	6·46 मी.
8.	16·37 मी.
9.	6·46 मी.
10.	6·44 मी.
11.	6·44 मी
12.	6·46 मी.
13.	6·44 मी.
14.	647 सेमी.
15.	6·45 मी.

(क) उक्त अवलोकनों में से कौनसे अवलोकन अधूरे हैं ? उनको सुधारकर नीचे दी गई जगह में लिखो—

अपूर्ण अवलोकन सुधार

(ख) इनमें से कौन से माप गलत हो सकते हैं ?

(ग) "ख" में दिये अपने उत्तर के कारण बताओ—

गलत माप गलती का कारण

(घ) संलग्न चौखाने कागज पर इन मापों का स्तम्भालेख बनाओ। स्तम्भालेख बनाते समय तुमने कौन से माप छोड़ दिए और क्यों ?

(च) इन मापों का बहुसम्मत मान क्या है ?

(छ) इन मापों का औसत निकालो। औसत निकालते समय तुमने कौन से माप छोड़ दिये ?

औसत छोड़े गए माप

(ज) अब बताओ कि बरामदे का सही माप क्या मान सकते हैं ?

(झ) उस माप को दशमलव के पहले अंक तक सन्निकटन करके लिखो।

सभी छात्रों से कुछ "न्यूनतम अपेक्षाएँ" की जाती हैं। यदि छात्र इन "न्यूनतम अपेक्षाओं" से संबंधित प्रश्नों में उत्तीर्ण नहीं हो पाता तो उसे विज्ञान विषय में भी उत्तीर्ण नहीं माना जाता। उपरोक्त प्रश्न न्यूनतम अपेक्षाओं से संबंधित मूल तत्व का है। शिक्षक परीक्षा के परिणामों का विश्लेषण एवं विवेचन करते हैं।

मैंने अनुभव किया है कि इस शिक्षण कार्यक्रम में बालक या शिक्षक के मन में परीक्षा का भय एवं बोझ नहीं है। उन्हें यह अहसास है कि जो छात्र इन वैज्ञानिक प्रक्रियाओं से गुजरा है उसके लिए परीक्षा पास करना कठिन कार्य नहीं है और न ही उसके लिए अलग से विशेष तैयारी करने की जरूरत है।

उपरोक्त उदाहरण के माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि **शिक्षा के विभिन्न घटक आपस में कितनी घनिष्ठता से जुड़े हुए है कि इन्हें अलग-अलग देखना कि किसी एक को शिक्षा का केन्द्र मानना शिक्षा के स्वत्व को बिगाड़ना ही है।** शैक्षिक अनुसंधान में लगी संस्थाओं को चाहिए कि वे ऐसे प्रयास सभी विषयों के करें ताकि शिक्षा रूपी शरीर के सभी अंगों का सन्तुलित विकास हो पाये। इससे परीक्षा का भूत अपने आप हट जावेगा।

परीक्षा के संदर्भ में कुछ और प्रश्नों पर भी चर्चा करना जरूरी है जैसे–

(1) क्या परीक्षा सत्र के अंत में हो, या सतत मुल्यांकन हो या दोनों क्यों हो और कैसे।

(2) बोर्ड परीक्षा बनाम स्थानीय परीक्षा–प्रायमरी, मिडिल या हायर सेकेण्डरी किस स्तर पर कौन सी परीक्षा हो ? निर्णय कौन करे, निर्णय का आधार क्या हो ?

(3) खुली पुस्तक परीक्षा बनाम पुस्तक रहित परीक्षा दोनों की तुलना में कौनसी पद्धति अच्छी है। और जो प्रश्न पत्र बनाने की प्रक्रिया– उसका प्रशिक्षण कैसा हो। एक व्यक्ति प्रश्न पत्र बनाए या तीन-चार की टोली.

लघुकथाएँ

बाल हृदय की गहराइयाँ

हज़ार बार कहा जा चुका है : शिक्षा श्रम है, इसे खेल में नहीं बदला जाना चाहिए। परन्तु श्रम और खेल के बीच चीन की दीवार भी नहीं खड़ी की जानी चाहिए। ज़रा ग़ौर से देखिए कि बच्चों के, ख़ास तौर पर जो अभी स्कूल नहीं जाते, उनके जीवन में खेल का क्या स्थान है। उनके लिये तो खेल ही सबसे गम्भीर कार्य है। खेल में ही बच्चे दुनियां को देखते हैं, खेल में ही व्यक्ति की क्षमताएँ प्रकट होती हैं। खेल के बिना तो सर्वांगीण, पूर्ण बौद्धिक विकास हो ही नहीं सकता। खेल, संसार में खुलने वाली विशाल खिड़की के समान है, जिसके रास्ते चारों ओर के संसार में कल्पनाओं व धारणाओं की जीवनदायी धारा बच्चे के आत्मिक जगत में प्रवेश करती हैं। खेल वह चिन्गारी है, जो जिज्ञासा और कुतूहल की आग जलाती है। अगर बच्चा खेल-खेल में लिखना सीखता है, अगर बौद्धिक विकास के निश्चित स्तर पर खेल और श्रम आपस में जुड़े होते हैं और शिक्षक बच्चों को यह नहीं कहता रहता कि "चलो बस खेल खत्म अब पढ़ाई करेंगे।" तो इसमें डरने की क्या बात है ?

खेल की अवधारणा बड़ी व्यापक है और इसके बहुत से पहलू हैं। बच्चों का दौड़ना और तेज़ी, फूर्ती में एक दूसरे का मुकाबला करना-केवल यही उनका खेल नहीं है। सृजन-क्षमताओं और कल्पना के असाधारण तनाव में भी खेल हो सकता है। बौद्धिक सर्वांगीण शिक्षा हो ही नहीं सकती। व्यापक अर्थ में खेल वहीं आरम्भ होता है, जहां सौन्दर्य है। परन्तु चूंकि सौन्दर्य के पुट के बिना नन्हें बच्चों के श्रम की कल्पना नहीं की जा सकती, अत: बाल्यावस्था से श्रम का खेल के साथ घनिष्ठ संबंध होता है।

पहला पाठ

—राजेन्द्र तोमर

कक्षा के द्वार पर लिखा है, "अनुशासन देश को महान बनाता है।"

हमारी कक्षा में तो इसका नामोनिशान नहीं था। बड़ा शोरगुल हुआ करता था। उस बूढ़े मास्टर साहब के समय तो आधी छुट्टी के पहले ही कई बार पानी पीने, पेशाब करने के बहाने लड़के बाहर घूमा करते थे। कक्षा में होते, तो शोर मचाते।

फिर मास्टर साहब रिटायर्ड हो गए।

अब जब से नई मैडम आई हैं, न तो बीच में किसी को छुट्टी मिलती न ही शोर होता है। उनकी छड़ी में वह जादू है, कि आधी छुट्टी में भी लड़के बाहर नहीं जाते।

वे अन्य सबक बाद में देती है पर, मैडम का पहला पाठ होता है, "मुंह बंद रखो।"

(लघु आघात से साभार)

विज्ञान शिक्षण के कुछ पहलू

—डॉ. अरविन्द गुप्ते

शिक्षा मनुष्य के जीवन से इतना अधिक जुड़ा हुआ विषय है कि हर व्यक्ति के शिक्षा को लेकर कुछ न कुछ विचार अवश्य होते हैं। यह जरूरी नहीं है कि शिक्षा के किस बिन्दु पर सभी व्यक्तियों के विचार समान हों। यहां तक कि शिक्षा के किसी पहलू को लेकर एक आम आदमी का एक विद्वान शिक्षा शास्त्री से मतभेद हो सकता है।

विज्ञान एवं तकनालाजी (प्रौद्योगिकी) के निकट सम्बन्ध के कारण आजकल विज्ञान शिक्षण को काफी महत्व दिया जा रहा है। प्रौद्योगिकी में उन्नत देशों जैसे रूस और अमरीका. में विज्ञान शिक्षण पर पर्याप्त साहित्य उपलब्ध है। अमरीका के सिरेक्यूज विश्वविद्यालय के शिक्षा शास्त्री, प्रोफेसर विलियम रोमी ने विज्ञान शिक्षण पर एक पुस्तक[1] लिखी है। विज्ञान शिक्षण के कुछ पहलुओं पर लेखक द्वारा व्यक्त किए गए विचारों का सारांश हम यहाँ दे रहे हैं। यदि आप इन पर कोई प्रतिक्रिया देना चाहें तो हम उसे सहर्ष प्रकाशित करेंगे। इस तथ्य का ध्यान रखें कि हम लेखक के विचारों को लगभग उनके शब्दों में ही दे रहे हैं। साथ ही यह पुस्तक अमरीकी विद्यालयों की स्थिति पर लिखी गई है। फिर भी, इसमें प्रस्तुत किए गए विचार अधिक व्यापक रूप से संगत हैं।

विज्ञान क्या है ?

आप किसी महाविद्यालय के विज्ञान के पाठ्यक्रम को देखें तो आप इस निष्कर्ष पर पहुँचे बिना नहीं रह सकेंगे कि विज्ञान केवल ज्ञान का एक भण्डार है। अधिकांश महाविद्यालयीन शिक्षक इस मान्यता को स्वीकार करते हुए प्रतीत होते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि छुटपुट प्रायोगिक कार्य एवं सामूहिक चर्चा[2] का सहारा लेकर विज्ञान मुख्य रूप से भाषणों के माध्यम से पढ़ाया जाता है। ऐसी स्थिति में शिक्षक एक सत्ताधारी बन जाता है और उसका प्रमुख काम ज्ञान बांटना और छात्रों को यह दिखाना कि वह उनसे कितना अधिक जानता है, रह जाता है।

विज्ञान शिक्षण की तुलना चित्रकला या संगीत के अध्यापन से की जा सकती है। यदि हम एक छात्र को केवल चित्रकला का इतिहास सिखाएँ और दूसरे को वास्तविक रूप से चित्र बनाने का प्रशिक्षण दें तो कौन-सा छात्र अधिक अच्छे चित्र बना सकेगा ? क्या संगीत के किसी वाद्य को बजाना सिखाने से पहले केवल किसी राग की धुन समझा देने भर से छात्र को कोई लाभ होगा ? किसी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय या महाविद्यालय के छात्र से पुस्तक पढ़कर या भाषण सुनकर विज्ञान पढ़ने की अपेक्षा करना भी इसी श्रेणी में आता है। हम छात्रों पर तथ्यों और जानकारी का बोझ लादते जाते हैं किन्तु बिरले ही छात्रों को विज्ञान करके सीखने का अवसर मिल पाता है।

हाल में किये गए परीक्षणों से स्पष्ट हो गया है कि प्राथमिक शालाओं के बच्चे भी विज्ञान के सरल प्रयोग कर सकते हैं। यह सही नहीं है कि प्रयोगनिष्ठ विधि से विज्ञान ऊँची कक्षाओं में ही पढ़ाया जा सकता है। इसके विपरीत, वैज्ञानिक विधियों एवं प्रक्रियाओं पर बल देना प्राथमिक शालाओं से ही शुरू होकर पूरे अध्ययन काल तक जारी रहना चाहिए।

क्रियाशील कक्षा में अनुशासन की समस्या

प्रायः शिक्षक यह मानते हैं कि अनुशासन का अर्थ छात्रों का पूरी तरह शिक्षक की सत्ता और नियन्त्रण में रहना है। किन्तु शिक्षा-शास्त्र की दृष्टि से अनुशासन की अधिक उचित परिभाषा इस प्रकार होगी : एक ऐसा प्रशिक्षण जिसके माध्यम से आत्म-संयम, चरित्र, नियमितता तथा कार्यक्षमता का विकास हो सके" ऐसी कक्षा में जिसमें छात्र हाथ पर हाथ धर कर चुपचाप बैठे हैं, उतनी ही अनुशासनहीन है जितनी अन्य कक्षा जिसमें खुला गदर हो रहा है।

क्रियाशील कक्षा में अधिक शोर होना स्वाभाविक है। क्रियाशीलता के साथ सीखने की प्रक्रिया भी हो रही है या नहीं यह जानने के लिए कक्षा में हो रहे वार्तालाप को सुनना जरूरी है। यदि छात्र विषय के बारे में बात कर रहे हैं और विधि, आंकड़ों या निष्कर्षों को लेकर बहस कर रहे हैं तो यह मान लेना चाहिए कि कक्षा का अनुशासन अच्छा है। यदि आप अपनी कक्षा में अच्छा अनुशासन चाहते हैं तो इसके लिए आपको सत्र के प्रारम्भ से ही प्रयास करना होगा।

जो छात्र विज्ञान सीखने की क्रियाशील विधि से परिचित नहीं है उनसे नियंत्रित प्रयोग एवं चर्चा करवाइए। छात्रों में ऐसी आदत डालिए कि वे कक्षा शुरू होते ही काम प्रारम्भ कर दें। आपको छात्रों को यह जता देना होगा कि आपकी कक्षा में पढ़ाई को गंभीरतापूर्वक लिया जाता है। इसका एक तरीका यह हो सकता है कि कक्षा में आते ही आप कोई प्रश्न आकस्मिक परीक्षण के रूप में दे दें या कोई गतिविधि शुरू करा दें या कोई चर्चा छिड़वा दें। जैसे ही छात्र यह समझ लेते हैं कि आपके कक्षा में आते ही उनकी विज्ञान की पढ़ाई शुरू हो जाती है, आप अपनी लड़ाई आधी जीत चुकते हैं। एक बार छात्रों और आपके बीच इस प्रकार का संबंध स्थापित हो जाने पर आप उन्हें प्रयोग एवं चर्चा करने के लिए क्रमशः अधिक छूट दे सकते हैं।

---

1. Inquiry Techniques for teaching Science by William D. Romey. Publisher-Prentice-Hall Inc.
2. जैसा कि पहले कहा गया है, उपरोक्त वर्णन अमरीकी महाविद्यालयों का है। हमारे देश के महाविद्यालयीय छात्रों को कक्षा में सामूहिक चर्चा तो शायद ही कभी नसीब होती हो।

मुक्ति

आज जब पढ़ाते-पढ़ाते मैंने तुझे
मारा, मेरे बच्चे
तब क्यों भर आयी मेरी आँखें
नम क्यों हो गये मेरे नाखून तक ?
तुम रोये नहीं, तुम हिले भी नहीं
बैठे रहे चुपचाप पाँव पर पाँव धरे
और मैंने देख तुम्हारे उघरे हुये
लम्बे सलौने पाँव ।
अब जब सोचता हूँ ठंडे मन से
अब जब उतरी है बाढ़
देखता हूँ अपने ही अन्दर दुर्गन्ध और
पीक से भरी हुई गलियाँ
टूटे मकान, ढही भित्तियाँ
देखता हूँ अपना विनाश ।
दोष मेरा ही था
मैंने कभी पूछा नहीं, कैसे हो तुम
जानना भी नहीं चाहा था क्या क्या पढ़ते हो
तुम
और आज जब अचानक देखा मैंने
तुम कुछ भी नहीं जानते
मेरा लड़का कुछ भी नहीं जानता
तब—
सोचो मैं कितना दुःखी था
हृदय ने बाँटे थे धमनियों में जो रक्त
आज
वे ही रक्त घोंटते थे हृदय ।
दोष लेकिन मेरा भी क्या था
मैं एक रिटायर्ड स्कल मास्टर
जो सुबह से शाम तक घूमता है यहाँ से
वहाँ
इसके उसके बेटे-बेटियों को ट्यूशन पढ़ाता
बैठता कैसे थोड़ी देर भी खुद अपने बेटे के पास—
जब घर से निकलता तुम सोये होते
जब लौटता, तुम सोये होते ।
चार साल हो गये,
चार साल हो गये अवकाश मिले—
कितना अच्छा था देखना एक भरा हुआ
कमरा
सूर्यमुखी फूलों सी सैकड़ों आँखें घूमती
मेरे साथ
मैं खिच्चा उंगलियों में खल्लियाँ
पकड़ाता
और आज मैं सेवा मुक्त हूँ, आजाद,
क्या किया मैंने इस जीवन में
सयानी लड़कियाँ, बच्चे कच्ची गृहस्थी
अभी भी जिन्दगी ढूँढती है धुरी
अभी भी जिन्दगी ढूँढती है मुक्ति,
कहाँ अवकाश कहाँ समाप्ति
अभी ही तो शुरू हुई है जिन्दगी
अभी ही तो चरखे में डाली है पूनी ।
क्यों उठ गये ये हाथ
आज क्यों उठे मेरे हाथ ।

अरुण कमल

"अपनी केवल धार—से"
वाणी प्रकाशन दिल्ली से साभार

वृक्षारोपण को बढ़ावा देने के व्यापक प्रयास

- मध्यप्रदेश में वर्ष 1985-86 में एक लाख हेक्टेयर पड़ती जमीन में वृक्षारोपण एवं चारागाह विकसित करने का लक्ष्य ।

- सड़कों, रेल लाइनों और नहरों के किनारे करीब 1500 किलोमीटर लम्बाई में वृक्षारोपण किया जाएगा ।

- पड़ती जमीन के उपयोग के लिए मुख्यमंत्री जी की अध्यक्षता में भूमि उपयोग तथा पड़ती भूमि परिषद का गठन ।

- वृक्षारोपण को बढ़ावा देने के लिए कृषि विभाग के अन्तर्गत बागवानी तथा कृषि वानिकी की रोपणियों से किसानों को फलदार वृक्षों के पौधे नि:शुल्क प्रदान करने का निर्णय ।

- भोपाल में राजकीय वनस्पति उद्यान और प्रत्येक जिले में जिला स्तरीय वनस्पति उद्यान बनाने का निर्णय । वनस्पति उद्यान के माध्यम से प्रदेश और जिले की समृद्धि वनस्पति धरोहर को प्रदर्शित करने की नई पहल ।

- किसानों का बागवानी के लिए जमीन तैयार करने और उसमें चारों-ओर बागड़ लगाने के लिए सहायता अनुदान देने की व्यवस्था ।

हरियाली से ही खुशहाली – वृक्षों की रक्षा कीजिए।

सू. प्र. सं. 8800510/85

सहयोग राशि : एक रुपया

डाक खर्च अतिरिक्त

एकलव्य, E-1/208, अरेरा कॉलोनी, भोपाल द्वारा प्रकाशित एवं नईदुनिया प्रिन्टरी, इन्दौर द्वारा मुद्रित ।
सम्पादकीय सम्पर्क : एकलव्य, नेहरू कॉलोनी, हरदा (म. प्र.)